डॉ. मनोज पांडेय

अनुवाद : मानवीय संपर्क की अनिवार्यता

भाषा मानव की प्रकृति प्रदत्त वह नैसर्गिक धरोहर है जिसके उद्‌भव और विकास का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य का। सृष्टि-विकास का इतिहास इस बात का गवाह है कि जैसे-जैसे मानव बुद्धि का विकास होता गया, उसमें सामाजिकता का भाव-बोध पनपने लगा। इसके साथ-साथ भाषा का भी विकास होता गया और उसकी अनिवार्यता बनती गई। निश्चित रूप से मानव जिस प्रकार प्रागैतिहासिक दौर से गुजरते हुए अपने आदि रूप से आज इस रूप में पहुँचा है, उसी प्रकार उसकी भाषा भी निरंतर परिष्कृत-परिवर्द्धित होते हुए आज इस रूप में पहुँची है। इस दौरान मानव-सभ्यता ने जिस प्रकार विकास के कई सोपान तय किए हैं, उसी प्रकार भाषा भी कई पड़ावों से गुजरते हुए समृद्ध एवं संपन्न हुई है।

इतिहास गवाह है दुनिया की जितनी भी भाषाएँ हैं उनका कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में एक-दूसरे से थोड़ा-बहुत संबंध अवश्य रहा है। इसका वैज्ञानिक और तार्किक कारण मात्र यह है कि मानव धरती के चाहे जिस भू-भाग का भी हो, उसकी भाषा चाहे जो भी हो, उसमें एक प्रकृतजन्य अद्‌भुत समानता है और वह इसीलिए है क्योंकि संसार की सभी भाषाएँ उच्चारणयवों से निःसृत शब्द हैं। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी जीवधारियों में भाषा मौखिक रूप में ही प्रस्फुटित हुई है।

चूँकि मनुष्य सृष्टि-प्रक्रिया में मानसिक रूप से सबसे उन्नत साबित हुआ, इसलिए उसकी भाषा, उसकी सभ्यता और संस्कृति सबसे अधिक उन्नत हुई तथा उसमें सामाजिकता का बोध सबसे अधिक पनपा। मानव में सामजिकता-बोध की धारणा ही उसे एक-दूसरे के निकट लाई। झुंडों, कबीलों, समूहों से एक सभ्य-सुसंस्कृत सामाजिक के रूप में मनुष्य की परिणति हुई। संभवतः इसी सामाजिकता-बोध ने ही मानव को संप्रेषण के लिए भाषा के व्यवहार की तरफ प्रेरित किया होगा। एक-दूसरे की भावनाओं और संवेदनाओं

को प्रकट करने के माध्यम से रूप में ही भाषा का विकास हुआ, यह कहना कतई गलत नहीं होगा। जैसे-जैसे मानवीय संपर्क की आवश्यकता बढ़ती गई, उसमें सामाजिक-बोध प्रबल होता गया, मानव सुसंस्कृत होता गया, उसकी भाषा का विकास होता गया। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि भाषा मात्र सूचनाओं या संदेशों के आदान-प्रदान का जरिया या प्रसारण का माध्यम ही नहीं है, बल्कि मानवीय संपर्क स्थापित करने और उसे बनाए रखने का सेतु भी है।

मानव-सभ्यता देश-काल के धरातल पर कभी समरूप नहीं रही है। उसमें भौगोलिक-सांस्कृतिक-धार्मिक, आचरणगत और व्यवहारगत विभिन्नता उसके उद्‌भव काल से ही रही है। जाहिर है भाषा की यह विभिन्नता भी उसमें रही है, क्योंकि भाषा परिवेश की उपज होती है। कहने का आशय यह है कि भाषा में दिखाई देने वाली भिन्न्ता परिवेशगत है इसीलिए उसमें समानता-असमानता के अंश तो तलाशे जा सकते हैं परंतु उनका 'डिमार्केशन' करने के लिए कोई 'वाटर टाइट लाइन' नहीं खींची जा सकती। पर, यह भी हकीकत है कि भाषा मानवीय संपर्क में रुकावट नहीं होती है। दुनिया की कोई भी ऐसी भाषा नहीं है जिसका प्रतिरूप या प्रतिशब्द अन्य भाषा में उपलब्ध न हो या उपलब्ध न किया जा सके, क्योंकि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भाषा ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था होती है। जैसे 'पानी' के लिए अंग्रेजी में 'water' मानवीय संपर्क के लिए एक भाषा के प्रतीक का दूसरी भाषा में प्रतीकांतरण ही अनुवाद है। भाषाविद् डॉ. भोलानाथ तिवारी ने कहा है कि ''भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन।'' पश्चिमी भाषाविद् और अनुवाद का भाषिक सिद्धांत रचने वाले कैटफोर्ड ने भी अनुवाद को परिभाषित करते हुए लिखा है – ''The replacement of textual material in one language by equivalent textual material in another language,'' is translation.

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह किसी भी भू-भाग का हो, किसी भी भाषा-बोली का व्यवहार करता हो, उसकी एक-दूसरे से संपर्क बनाने की लालसा होती है। भौगोलिक चौहद्दी देश की सरहदें निर्धारित करती हैं, परंतु भाषा इन चौहद्दियों को पार कर मानवीय संपर्क स्थापन के लिए सेतु का कार्य करती है। जैसे-जैसे विश्व एक ग्राम की अवधारणा का कायल होता जा रहा है वैसे-वैसे मानवीय संपर्क की सुदृढ़ता और समुन्नता अपरिहार्य होती जा रही है। आज सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। संचार की सुविधा के व्यापक प्रचार-प्रसार के कारण राष्ट्रों की भौगोलिक दूरियाँ सिकुड़ती जा रही हैं। ऐसे में भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोगों के बीच संपर्क बनाए रखने के लिए, संवाद की प्रक्रिया जारी रखने के लिए, सामाजिक-सांस्कृतिक विचार-विनिमय के लिए तथा एक-दूसरे देश की वैज्ञानिक-औद्योगिक उन्नति की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि

विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के बीच संपर्क कायम रखा जाए। लेकिन यह संपर्क तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि अनुवाद का सहारा न लिया जाए।

मानव के भाषा-बोध की एक सीमा है। किसी भी राष्ट्र का आम नागरिक सामान्यतः एक या दो भाषाएँ ही जानता है। परंतु बहुभाषी समाज में इससे काम हीं चलता। उदाहरण के लिए, अपने देश के ही बहुभाषिक समाज को देखा जा सकता है। संविधान के अनुसार हिंदी देश की राजभाषा है। अंग्रेजी सह-राजभाषा के रूप में कार्य कर रही है। हिंदी एक तरह से मात्र अनुवाद की भाषा के रूप में राजभाषा के चौखटे पर विराजमान है। इतना ही नहीं, हमारे संविधान में देश की बहुभाषायी नीति के कारण ही क्षेत्रीय भाषाओं को भी राज्यों की राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। शासकीय स्तर पर यह भाषा-नीति मानवीय संपर्क के लिए अनुवाद की महत्ता स्वयं सिद्ध कर रही है। कोई भी प्रशासनिक कामकाज हो, यदि उसका पूरे देश से ताल्लुक है यानी जन-सामान्य से जुड़ा हुआ है, तो उसे अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषा-भाषी समाज तक पहुँचाना संवैधानिक अनिवार्यता है। शासन की भाषा-नीति भी किसी कमजोरी या मजबूरी का परिणाम नहीं है, बल्कि देश की बहुभाषिक-सामासिक संस्कृति के कारण है और यह अपरिहार्य है, इससे परहेज करके नहीं चला जा सकता। कहने का आशय यह है कि प्रत्यक्षतः अनुवाद हमारे देश की संघीय व्यवस्था के परिचालन और उसकी सामासिक संस्कृति को कायम रखने के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है।

यही नहीं, जब एक भाषा-भाषी अन्य भाषा में व्यवहार करता है तब भी वह अनुवाद को ही जरिया बनाता है। चूँकि व्यक्ति किसी भी भाषा का व्यवहार करने से पहले अपनी मातृभाषा में ही सोचता है, सीखता है इसलिए उसके मन-मस्तिष्क में कोई भी विचार या भाव पहले मातृभाषा में ही प्रस्फुटित होता है। बाद में वह उसे जिस भाषा में चाहता है उसमें उसे मन में ही अनूदित करके अभिव्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिक भी इस बात को मानते हैं। यही वजह है कि व्यक्ति चाहे जो भी भाषा बोले, उसकी मातृभाषा का कुछ न कुछ प्रभाव उस पर अवश्य नजर आता है।

जीवन-व्यवहार के सभी कार्यों में अनुवाद की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। प्रशासन में ही नहीं, बल्कि मनुष्य के दैनंदिन व्यवहार में भी अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। व्यापार-व्यवसाय, धर्म और संस्कृति का प्रचार-प्रसार, संचार माध्यमों का नेटवर्क हो या शिक्षा का प्रचार-प्रसार, विज्ञान एवं तकनीकी की अद्यतन जानकारियों-उपलब्धियों से परिचय प्राप्त करना हो या अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर विचार-विनिमय करना सर्वत्र अनुवाद की जरूरी भूमिका लक्षित होता है।

जहाँ तक व्यापार-व्यवसाय की बात है, अपने देश में ही एक-भाषी समाज दूसरे

भाषी समाज से व्यापार-व्यवसाय करने वाले को उस प्रदेश की भाषा की जानकारी हो, यह आवश्यक नहीं है। परंतु व्यापार के लिए विचार-विनिमय तो आवश्यक है, इसीलिए यहाँ अनुवाद का सहारा लिया जाता है। इसी प्रकार धर्म और साहित्य एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए अनुवाद की निःसंदिग्ध भूमिका है। रामायण, गीता, पुराण आदि का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। लैटिन भाषा में लिखी गई बाइबिल का अनुवाद आज दुनिया की असंख्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध है।

धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में धार्मिक साहित्य के अलावा उस साहित्य की भी आवश्यकता होती है जिसमें जनता की जीवनानुभूतियों का चित्रण होता है। यह साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध किसी भी विधा का हो सकता है। मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यंजना के इस प्रधान माध्यम का अन्य भाषा-भाषी जन-सामान्य से तादात्म्य अनुवाद के माध्यम से ही होता है।

संचार माध्यमों का नेटवर्क अनुवादजीवी ही होता है; ऐसा कहना कतई गलत नहीं होगा। जन-संचार (mass communication) एक व्यापक उद्देश्य लेकर चलता है। प्रत्येक भाषा-भाषी समाज तक उसकी पहुँच बन सके, इसके लिए वह अनुवाद का रास्ता अपनाता है। संचार सामग्री चाहे किसी भी भाषा में 'क्रिएट' की जाए उसे अपनी 'मास-कम्युनिकेशन' की अवधारणा को दृष्टिगत रखते हुए अनूदित रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है। चाहे समाचार-पत्र हों या रेडियो-टेलीविजन आदि, सभी में बहुभाषिक स्थिति देखने को मिलती है। एक आँकड़े के अनुसार आकाशवाणी प्रतिदिन लगभग बाईस भाषाओं में अपने बुलेटिन प्रसारित करता है। टेलीविजन पर भिन्न भाषाओं के चैनल कई कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

विज्ञान एवं तकनीकी आज के समाज की उन्नति के प्रधान आधार-स्तंभ माने जा रहे हैं। इसका कोई सीमित दायरा नहीं होता। आविष्कार चाहे अमेरिका में हो या जापान में, वह सारे मानव समाज की संपत्ति बन जाता है। इसके लिए अनुवाद को माध्यम बनाया जाता है। आज की तारीख में अंग्रेजी भाषा इस क्षेत्र की प्रधान भाषा है। अन्य भाषाओं में तकनीकी जानकारी अंग्रेजी से अनुवाद के माध्यम से ही पहुँच रही है। विश्व-ग्राम की अवधारणा ने प्रगति के जो नए सोपान मानव को उपहार में दिए हैं, उन्हें सर्वजन सुलभ कराने के लिए अनुवाद की नितांत आवश्यकता है। भौगोलिक चौहद्दियों की दूरियाँ जैसे-जैसे सिमट रही हैं और मानव समुदाय एक-दूसरे के करीब आ रहा है, वैसे-वैसे विचार-विनिमय की प्रक्रिया तेज होती जा रही है। चाहे विज्ञान के चमत्कारिक अनुसंधान से लाभ उठाने की बात हो, चाहे आतंकवादी गतिविधियों पर रोक लगाने की आवश्यकता हो, चाहे प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए एक-दूसरे राष्ट्र को सहयोग करने

की भावना हो – सर्वत्र अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। दो देशों के राष्ट्राध्यक्ष या आम नागरिक भी जब एक-दूसरे से बात करते हैं तो अनुवाद को ही माध्यम बनाते हैं। कहने का आशय यह है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मानवीय संपर्क स्थापित करने में अनुवाद की उल्लेखनीय भूमिका है।

परंतु अफसोस है कि मानवीय संपर्क के लिए अनुवाद की भूमिका को जानने के बावजूद जाने-अनजाने इसे दोयम दर्जे का काम माना जाता रहा है। ऐसी धारणा रही है कि अनुवाद मूल का नाश कर देता है। परंतु ये अतिरंजनाएँ हैं। अनुवाद की सार्वदेशिक आवश्यकता ने अब इन धारणाओं को निर्मूल साबित कर दिया है। ऐसी धारणाओं को इधर भूमंडलीकरण की अवधारणा ने भी बेबुनियाद साबित कर दिया है। अनुवाद, आज मानवीय संपर्क का प्रधान सेतु बनकर दुनिया के नक्शे में दोनों गोलार्द्धों को परस्पर करीब लाने का प्रयास कर रहा है। इस बात पर विवाद हो सकता है कि अनुवाद मूल का पुनर्सृजन है या नहीं, परंतु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि अनुवाद संपर्क का एकमात्र मूल माध्यम है। दुनिया-भर के मानव समुदाय की सोच को एक ही भाषा में ला पाना दुष्कर ही नहीं नामुमकिन है, परंतु अनुवाद के द्वारा मानव समुदाय को करीब लाया जा सकता है – यह कपोल-कल्पना नहीं, सिद्ध तथ्य है।

❑

डॉ. राजनारायण अवस्थी

भाषा की विकसनशीलता और अनुवाद

निश्चित ही आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व 'सार्वभौम साहित्य' की संकल्पना आविर्भूत हुई और गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर जैसे मनीषियों ने 'विश्व साहित्य' की अवधारणा प्रस्तुत की, तथापि इससे विश्व-मानव लाभान्वित नहीं हो पा रहा है। अब भाषा-वैज्ञानिकों, अनुवादविदों, समालोचकों और साहित्यकारों तथा समाज-चिंतकों को पुनः इस विषय पर विश्लेषण करना चाहिए। आज वैश्वीकरण के दौर में विश्व की भाषाओं में नए-नए घटकों का निर्माण हो रहा है। इन विकसनशील घटकों से साहित्य में नवीन आयामों और संभावनाओं का पल्लवन हो रहा है। जो भाषाएँ भाषावैज्ञानिक और व्याकरणिक स्तर पर कभी दूरस्थ अन्य परिवार की भाषाएँ लगती थीं, आज वही भाषाएँ भौगोलिक बंधन को तोड़ रही हैं। अनुवाद का अध्ययन ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विश्व संस्कृति और विश्व भाषाओं से साक्षात्कार किया जा सकता है। भाषा, संस्कृति और व्यवहार का अनुवाद से अत्यंत गहरा संबंध है।

प्रख्यात भाषावैज्ञानिक बैंज़मिन ली ब्होर्फ ने अपनी पुस्तक 'Language, Thought and Reality' में लिखा है कि ''भाषा, संस्कृति तथा व्यवहार का जाल ऐतिहासिक रूप में किस प्रकार व्यक्त होता है? कौन सी चीज पहले थी... भाषाई अभिरचनाएँ या सांस्कृतिक मानक? मुख्य रूप से ये दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए एक ही साथ विकसित हुई हैं। परंतु इस साझेदारी में भाषा की प्रकृति एक ऐसा तत्व है जो स्वच्छंद लचीलेपन को सीमित कर देती है तथा विकास के साधनों को अधिक निरंकुश रूप में कठोर बना देती है। ऐसा इसलिए होता है कि भाषा एक व्यवस्था है न कि मानकों का एक समूह। बड़ी-बड़ी व्यवस्थित रूपरेखाएँ किसी वास्तविक नई चीज को बदल तो सकती हैं, परंतु सांस्कृतिक नवीनताएँ अपेक्षाकृत तेजी से लाई जा सकती हैं। अतः भाषाएँ संप्रदाय के मन का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह आविष्कारकों तथा नवीनताओं के द्वारा प्रभावित होती है।''

जब-जब भाषा की विकसनशीलता पर विमर्श हुआ है, अनुवाद अपना एक नया

और परिमार्जित रूप लेकर आया है। तात्पर्य यह है कि अनुवाद के बिना भाषा की विकसनशीलता को न तो विश्लेषित किया जा सकता है और न ही किसी भाषा की शब्द सामर्थ्य की गहराई का आकलन किया जा सकता है। इस संबंध में प्रो. चंद्रशेखर के अनुसार ''मानव सभ्यता में ज्ञानवर्धन का एक साधन अनुवाद रहा है। अनुवाद सांस्कृतिक आयामों के अध्ययन एवं तुलनात्मक दृष्टिकोणों को विधिवत् परखने का एक मापदंड भी है। अनुवाद प्रक्रिया को ज्ञान-व्यापार अर्थात् विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों तथा साहित्यिक क्षेत्रों की आवश्यकताओं का पूरक माना गया है। इन्हीं आवश्यकताओं तथा अनुभवों के कारण अनुवाद प्रक्रिया प्रत्येक युग में विभिन्न अवस्थाओं से गुजरी है।''[1]

अनुवाद के इसी चिंतन पर डॉ. पूरनचंद टंडन ने और गंभीरता से विचार किया है कि ''अनुवाद उपकार भी है तो उपहार भी। उपासना भी है तो साधना भी। ऊर्जा भी है तो ऋजुता भी। एकाग्रचित्त होने या बनने का मार्ग भी है तो कर्मठता और कर्तव्यपरायणता की प्रतिबद्धता भी। गांभीर्ययुक्त अनुशासन भी है तो चिंतनशील विधा भी। जिज्ञासा को समाप्त और शांत करने का साधन भी है तो विषय एवं भाषागत दक्षता प्रदान करने वाला गुरु भी। दूरदर्शिता का झरोखा भी है अनुवाद तो दृढ़ प्रतिज्ञ होकर लक्ष्य संधान की शक्ति भी। उपकृत करने की शिक्षा भी है अनुवाद तो 'धैर्य, ध्यान और ध्येय' प्राप्त का मार्ग भी है अनुवाद। नवीनता और निमग्नता का संगम भी है अनुवाद तो निष्ठा, परिश्रम, परहित, पुरुषार्थ, प्रज्ञा और प्रतिभा-प्रतिष्ठा का काम भी है अनुवाद।''[2]

आज विश्व के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जो उथल-पुथल है, उसका सार्थक निराकरण अनुवाद है। लेकिन अनुवाद की गरिमा अैर सार्वभौमिक प्रतिष्ठा का आकलन करने के लिए अनुवादक को भाषाई विकसनशीलता के अनुप्रयुक्त पक्ष (applied aspect of evolutionness of Language) पर अधिक ध्यान देना चाहिए। इस बदलते समाज में हर रोज नई-नई संकल्पनाओं का विकास हो रहा है और उन संकल्पनाओं के तदनुकूल नए-नए शब्दों का निर्माण स्वतः हो रहा है। इतिहास के पटल पर होने वाली घटनाएँ भी कभी-कभी ऐसे ऐतिहासिक क्षणों को लिखकर चली जाती हैं जो सदा-सदा के लिए अमिट साक्ष्य बन जाती हैं। अमेरिका के 'वर्ल्ड ट्रेड सेंटर' की और 'मुंबई' में आतंकवादियों की क्रमशः 11 सितंबर, 2001 और 26 नवंबर, 2008 की घटनाएँ विश्व इतिहास में सदैव के लिए एक दुःखद अध्याय बनकर रह गईं। इनका अनुवाद करना अनुवादक के लिए कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है। आज 9/11 और 26/11 कहने मात्र से ही प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक ऐसा चित्र आ जाता है जिसका अनुवाद शब्दों के माध्यम से तो कभी किया ही नहीं जा सकता है। इस संबंध में अंग्रेजी-हिंदी ही नहीं विश्व की किसी भी भाषा में इनका अनुवाद असंभव है। अनुवादक के समक्ष इन दो घटनाओं के अनुवाद के लिए कोई शब्द नहीं है। वैसे अंग्रेजी की एक उक्ति इस संबंध में अत्यंत सार्थक सिद्ध होती है – 'Language is a poor substitute of thoughts.'

अनुवाद कार्य में अनुवादक अपने कोश की सहायता से आगे बढ़ता है, लेकिन कोश-विज्ञानी की भी अपनी कुछ सीमाएँ हैं। कोश-विज्ञान पर अध्ययन करने वाले विद्वानों ने कभी सोचा या कल्पना भी न की होगी कि अंक भी कभी शब्द बन जाएँगे। वस्तुतः ये शब्द क्या, पूरी तरह से प्रोक्ति ही हैं। प्रशासन में नित नई-नई योजनाओं और नियमों का समावेशन हो रहा है। अनुवादक को इनके अनुवाद के प्रति भी सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। अर्थात् विश्व की भाषाओं में अनेक विकसनशील घटकों का निर्माण हो रहा है। साहित्य निर्माण में इन घटकों का योगदान अप्रतिम है। विश्व की भाषाओं में इन्हीं विकसनशील घटकों के आधार पर अनुवाद कार्य निरंतर बढ़ता जा रहा है। इसी विकसनशीलता के पूर्वानुमान की दृष्टि से प्रख्यात अनुवादशास्त्री पॉल एंजिल्स ने कहा था कि 21वीं सदी में प्रत्येक देश में दो प्रकार का साहित्य होगा। एक उसका अपना साहित्य और दूसरा अनूदित साहित्य। इसी अनूदित साहित्य के माध्यम से हम दूसरी भाषा, संस्कृति, समाज और उसकी रचनाधर्मिता से साक्षात्कार कर सकते हैं। इस संदर्भ में नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार अनुवाद संबंधी निम्नलिखित आँकड़े अत्यंत महत्वपूर्ण हैं :

भाषावार पुस्तकों के अनुवाद की स्थिति			**वे भाषाएँ, जिनमें अनुवाद किया जा रहा है**		
1. जर्मन	:	247631	1. अंग्रेजी	:	860139
2. स्पैनिश	:	192365	2. फ्रांसीसी	:	161826
3. फ्रांसीसी	:	164448	3. जर्मन	:	146176
4. अंग्रेजी	:	103293	4. रूसी	:	89860
5. जापानी	:	90803	5. इटैलियन	:	48240
6. डच	:	88362	6. स्पैनिश	:	37380
7. पुर्तगाली	:	66062	7. स्वीडिश	:	27089
8. रूसी	:	61333	8. लैटिन	:	14797
9. पॉलिस	:	50678	9. डैनिश	:	13916

एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण सर्वेक्षण Index Translation के अनुसार विश्व के 10 अग्रणी अनुवादित लेखक/साहित्यकार इस प्रकार हैं – (1) वाल्ट डिजनी प्रोडक्शंस, (2) अगाथा क्रिस्टी, (3) जूएस वर्न, (4) लेनिन, (5) एरिड ब्लाइटन (6) बरबोरा कर्टलैंड, (7) विलियम शेक्सपीयर, (8) डैनियल स्टील, (9) हैंस क्रिश्चियन एंडर्सन, (10) स्टीफेन किंग।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए-नए विकास और संकल्पनाओं के उद्‌भव के कारण अनुवादक को अब और अधिक सजग रहने की आवश्यकता है। वैमानिकी (Aeronautical) का Touch down और ए.टी.एम. तथा मोबाइलों के Touch screen इसके अन्यतम उदाहरण

हैं। इस परिप्रेक्ष्य में Touch (Verb) के विभिन्न भाषाई प्रयोजन इस प्रकार हैं :

1. To press or push lightly	छूना, स्पर्श करना (ATM के संदर्भ में)
2. To make in hand or mouth	छूना He never touches the alchohol. वह शराब कभी नहीं छूता।
3. To paint or draw with light strikes strikes	हल्के हाथ से रंगना या चित्रित करना, छूना। She is giving a finishing/final touch to her painting.
4. To meddle with	हाथ लगाना, छेड़छाड़ करना, हटाना, घटाना-बढ़ाना No one will touch your books. तुम्हारी पुस्तकों को कोई नहीं छुएगा।
5. To commit violence upon	मारना-पीटना, हाथ लगाना He never touches the boy. उसने बच्चे को कभी हाथ नहीं लगाया।
6. To reach	पहुँचना His temperature has touched 103^0 C. उसका ताप* 103^0C पहुँच गया।

*यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि temperature का प्रयोग मनुष्य के लिए है तो इसका अभिप्राय 'ताप' से है और यदि इसका प्रयोग प्रकृति या प्राकृतिक वस्तु के लिए हुआ है तो इसका अभिप्राय 'तापमान' से है।)

7. To be in contact	संबद्ध होना, संबंध रखना The matter hardly touches us. – इस बात का हमसे क्या मतलब।
8. To be equal to	के बराबर होना। He is good student but cannot touch you.
9. To move emotionally	द्रवित हो जाना, पसीजना, प्रभावित होना His story touched me. उसकी कहानी से मैं पसीज उठा।

10. To treat (a topic) lightly	(किसी विषय के संबंध में) सरसरी दृष्टि से कुछ कहना या चर्चा करना
11. To presuade	दबाव डालना
12. Touch bottom	निम्न या अधम स्थिति पर पहुँचना
13. Touch down	(हवाई जहाज का) नीचे उतरना Aircraft will touch down at 1800 hrs.
14. Touch off	उत्तेजित या प्रेरित करना The remark touched off a commotion. टिप्पणी ने हलचल मचा दी।
15. Touch on	किसी विषय को छूना, चर्चा करना।
16. Touch up	अंतिम रूप से सजाना-सँवारना The act of touching (स्पर्श, संस्पर्श) The sensation from a specific contact (स्पर्शानुभूति) soft touch of child (बच्चे का कोमल स्पर्श) Contact or communication (संपर्क या बातचीत) We have no touch with them. हमारा अब उनसे कोई संपर्क नहीं है। A manner or style of doing something. (काम करने का ढंग) A slight trace (पुट, अल्प मात्रा में) Touch of cold (हल्का-सा जुकाम)
17. In touch with	संपर्क में (Keep me in touch with your activities. मुझसे संपर्क बनाए रखना।)

❑

संदर्भ

1. अनुवाद, अंक 143-144, अनूदित फ़ारसी साहित्य विशेषांक, (मानव संस्कृति और उसकी आत्मा का प्रकाशक : फ़ारसी अनुवाद, पृष्ठ vi)
2. अनुवाद, अंक 143-144, अनूदित फ़ारसी साहित्य विशेषांक, (मानव संस्कृति और उसकी आत्मा का प्रकाशक : फ़ारसी अनुवाद, पृष्ठ 42)

प्रो. हेमचंद्र पाँडे

अनुवाद की इकाइयाँ

1. मूलपाठ का अंशविभाजन : अनुवादक को अनुवाद करने के लिए जो सामग्री प्राप्त होती है, सबसे पहले वह उसे उसकी संपूर्णता में देखता है। अनुवाद की जाने वाली सामग्री अपने आप में एक समग्र पाठ होता है जिसे हम अनवाद का मूलपाठ कह सकते हैं। मूलपाठ का अनुवाद, सामान्यतः एक-एक वाक्य को लेकर, वाक्य-दर-वाक्य किया जाता है। 'सामान्यतः' इसलिए कि लक्ष्य भाषा की अपनी विशेषताओं के कारण कभी एक वाक्य को तोड़ना पड़ता है, तो कभी दो वाक्यों को मिलाना पड़ता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के दो निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद हिंदी में चार वाक्यों में किया गया है :

मूल : Since 1960, SPAN has linked India and United States, offering articles from writers in both countries on culture, business, technology, education, health, social development, arts and achievemnets in U.S. — India relations. Beautiful photography and also articles from the best American publications are showcased in every issue of SPAN, which is published in English, Hindi and Urdu. *(calendar, 2007)*

हिंदी अनुवाद : 'स्पैन' 1960 से ही भारत और अमेरिका के बीच सेतु का काम कर रही है। यह संस्कृति, कारोबार, तकनीक, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक विकास, कला और अमेरिका-भारत संबंधों की उपलब्धियों पर दोनों देशों के लेखकों की रचनाएँ पाठकों तक पहुँचाती है। 'स्पैन' के हर अंक में सुंदर चित्र तो होते ही हैं, साथ ही अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशनों की सामग्री भी इसमें पुनर्प्रकाशित की जाती है। यह अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू में प्रकाशित होती है।

प्रायः हम एक-एक वाक्य को लेकर ही चलते हैं। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो हम 'वाक्य' को अनुवाद की प्रमुख इकाई मान सकते हैं क्योंकि किसी

संपूर्ण विचार की अभिव्यक्ति सामान्य रूप से वाक्य के द्वारा ही होती है। परंतु वाक्य अनुवाद की एकमात्र इकाई नहीं है। वास्तव में वाक्य का अनुवाद भी उसे छोटे-छोटे अंशों में बाँट कर किया जाता है। अर्थात् मूलपाठ का अनुवाद एक साथ कभी नहीं किया जाता है। मूलपाठ को अनुवाद के लिए उपयुक्त छोटे-छोटे अंशों में बाँटे जाने को हम 'मूलपाठ का अंश विभाजन' कह सकते हैं। किसी भी सामग्री का अनुवाद करते समय मूलपाठ का अंश विभाजन करना आवश्यक होता है।

अंश विभाजन का औचित्य

मूलपाठ का एक बार अवलोकन करने के बाद ही अनुवादक उसका अनुवाद करना आरंभ करता है। अनुवाद का मूलपाठ अपने आप में बहुत छोटा, छोटा, बड़ा, बहुत बड़ा – कैसा भी हो सकता है। सामान्यतः अनुवाद का मूलपाठ कई वाक्यों का होता है। इस पूरे मूलपाठ का अनुवाद एक साथ कभी भी नहीं किया जाता है। लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार मूलपाठ को अनुवाद के लिए उपयुक्त छोटे-छोटे अंशों मे बाँटना पड़ता है। मूलपाठ का अंशविभाजन अनुवाद प्रक्रिया का आवश्यक अंग है। मूलपाठ का इस प्रकार का अंशविभाजन अर्थ और व्याकरण दोनों के ही आधार पर किया जाता है। लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार मूलपाठ के अंशविभाजन से प्राप्त मूलपाठ के छोटे-छोटे अंशों को ही 'अनुवाद की इकाई' कहते हैं।

अनुवाद की इकाइयों की चर्चा विशेष रूप से कनाडा के फ्रेंच विद्वानों विने और दार्बेल्ने (Vinay J. & Darbelnet J. *Stylistique compar'e du français etl' de Langlais. Me 'thiode et traduction, paris, 1958*) ने तथा रूसी अनुवादशास्त्री ले.स्ते. बर्खुदारोव (Barkhudarov L.S. *Yazyk i perevod,* 1975) ने की है। विने और दार्बेल्ने के अनुसार अनुवाद की इकाई से तात्पर्य है – किसी प्रोक्ति का वह अंश जिसका अनुवाद की दृष्टि से विभाजन नहीं किया जा सकता है। बर्खुदारोव के अनुसार अनुवाद की इकाई से तात्पर्य है – स्रोत भाषा की ऐसी न्यूनतम इकाई जिसके लिए लक्ष्य भाषा में कोई समानक उपलब्ध है। इस आधार पर बर्खुदारोव ने (1) स्वनिम, (2) लेखिम, (3) रूपिम, (4) शब्द, (5) पदबंध; और (6) वाक्य को अनुवाद की इकाइयाँ माना है। इनमें से स्वनिम और लेखिम का संबंध लिप्यंतरण से है, अर्थ से इनका संबंध नहीं है जबकि अनुवाद में अर्थ ही मुख्य होता है। रूपिम, शब्द, पदबंध और वाक्य भाषा की सार्थक इकाइयाँ हैं। इसलिए अनुवाद की दृष्टि से इनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। लिप्यंतरण लिखित अनुवाद का आवश्यक अंग होता है। इसलिए अनुवाद में लिपिचिह्नों के अनुवाद को भी शामिल किया जा सकता है (गोर्बोव्स्की 2004, पृ. 247-263, के आधार पर)।

अनुवाद करते समय किसी भी अनुवादक को मूलपाठ के अंशविभाजन से प्राप्त मूलपाठ के इन छोटे-छोटे अंशों (अर्थात् अनुवाद की इकाई) की ओर ध्यान देना ही पड़ता है। मूलपाठ के अंशविभाजन का यही औचित्य है। इसलिए अनुवाद-सिद्धांत और अनुवाद-व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से अनुवाद की इकाइयों की चर्चा करना आवश्यक है।

अंशविभाजन का आधार

मूलपाठ को छोटे-छोटे अंशों में बाँटने की प्रक्रिया इतनी तेज़ी से घटित होती है कि अनुवादक को उसका आभास ही नहीं होता है, उसी तरह जैसे कि अपनी बात कहने के लिए भाषा के न्यूनतम अंशों को जोड़कर हम तुरंत वाक्य की रचना कर लेते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएँ – वाक्य का अंशविभाजन और वाक्य की रचना – हमारे मस्तिष्क में बहुत तेज़ी से घटित होती है। मस्तिष्क में घटित होने के कारण इन प्रक्रियाओं का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता है। तो फिर उनकी वास्तविकता का आधार क्या है?

जहाँ तक अनुवाद की दृष्टि से वाक्य के अंशविभाजन की बात है, उसकी वास्तविकता का परोक्ष आधार यह है कि अनुवाद करते समय हम कभी-कभी मूलपाठ के किसी अंश पर आकर अटक जाते हैं। सामान्यतः कोई शब्द इस प्रकार की समस्या उत्पन्न करता है। पर केवल शब्द ही नहीं, शब्द से बड़े अंश – पदबंध और वाक्य – तथा शब्द से छोटे अंश – उपसर्ग (पूर्वप्रत्यय), प्रत्यय (परप्रत्यय) और विभक्तियाँ – भी अनुवाद के लिए कभी-कभी समस्या पैदा कर देते हैं। कभी-कभी किसी अपरिचित नाम का लिप्यंतरण भी अनुवादक को सोचकर करना पड़ता है अर्थात् नामों के उचित लिप्यंतरण भी अनुवादक को ध्यान देना पड़ता है। कभी-कभी स्रोत भाषा के व्याकरण की कोई विशिष्टता भी अनुवादक के लिए समस्या बनकर आ सकती है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक भाषिक समुदाय में वाक्शिष्टाचार अर्थात् वाग्व्यवहार की – अभिनंदन, स्वागत, विदाई, शुभकामना आदि की – कुछ विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ प्रचलित होती हैं। इन अभिव्यक्तियों का अनुवाद भी पूरी एक इकाई के रूप में करना पड़ता है। मूलपाठ में आईं लोकोक्तियों का अनुवाद भी लक्ष्य भाषा में उपलब्ध उनकी समकक्ष लोकोक्तियों अथवा उनके अर्थ के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद की इकाइयाँ विविध प्रकार की हो सकती हैं और उनका अनुवाद उनकी इसी विशिष्टता को ध्यान में रखकर किया जाता है। अनुवाद की इस प्रकार की समस्याओं के आधार पर ही अनुवाद की इकाइयों की चर्चा की जा सकती है। इस विषय पर अनुवादशास्त्र की कुछ रूसी तथा फ्रेंच पुस्तकों में भी विचार किया गया है। यहाँ पर शब्दों और उनके घटकों, पदबंधों और उनके घटकों, वाक्शिष्टाचार की अभिव्यक्तियों और लोकोक्तियों को लेकर अनुवाद की इकाइयों को समझाने का प्रयास किया गया है।

अनुवाद की इकाई के प्रमुख आधार

वस्तुतः अनुवाद की इकाई को पहचानने की उपर्युक्त विधि, एक प्रकार से, नकारात्मक लक्षणों पर आधारित है क्योंकि उसमें अनुवादक के सामने आने वाली कठिनाइयों को अनुवाद की इकाइयों की पहचान का आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त जो भी इकाइयाँ ऊपर बताई गई हैं वे सब भाषा की ही इकाइयाँ हैं। तो फिर अनुवाद की दृष्टि से इनकी सार्थकता क्या है? इनकी सार्थकता इसी बात में है कि अनुवाद करते समय इनमें से किसी भी इकाई की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ सकती है अर्थात् इनके लिए उचित समानक ढूँढने पड़ सकते हैं। ये समानक अपनी संरचना में मूलभाषा की इकाई के समनुरूप भी हो सकते हैं और असमनुरूप भी। यदि उनमें केवल पूर्ण समनुरूपता ही हो तो फिर अनुवाद की इकाइयों की चर्चा ही अनावश्यक हो जाए। इसलिए अनुवाद की इकाइयों का महत्व उनके इन दो लक्षणों – समनुरूपता और असमनुरूपता – के कारण है जो स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की पृष्ठभूमि में ही प्रकट होते हैं। इसलिए अनुवाद की इकाइयों की चर्चा का मुख्य आधार है – स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में उनकी समनुरूपता और असमनुरूपता। इन्हीं दो लक्षणों को हमने अनुवाद की इकाइयों की चर्चा का आधार बनाया है। (1) समनुरूपता; और (2) असमनुरूपता की संकल्पना को आगे समझाया गया है।

1. समनुरूपता

अनुवाद की इकाइयों की 'समनुरूपता' से तात्पर्य है – स्रोत भाषा के प्रत्येक घटक के लिए लक्ष्य भाषा में समनुरूप घटकों का होना। इस प्रकार की समनुरूपता को हम 'रूपपरक समानता' कह सकते हैं। अनुवाद की इकाइयों की समनुरूपता शब्दों, पदबंधों और रूढ़ अभिव्यक्तियों में देखी जा सकती है। अनुवाद की समनुरूप इकाइयों की चर्चा आगे की जा रही है।

(क) समनुरूप रूढ़ शब्द : प्रत्येक भाषा में उपसर्ग, प्रत्यय आदि से रहित किसी मूल धातु से बने रूढ़ शब्द होते हैं। ये रूढ़ शब्द सरल शब्द भी कहलाते हैं। यदि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के रूढ़ शब्दों में समानता है तो उन्हें 'समनुरूप रूढ़ शब्द' कहा जाएगा। इस श्रेणी में अनेकों शब्द आते हैं, जैसे :

अंग्रेजी	हिंदी
house	मकान
shop	दुकान
stone	पत्थर
wall	दीवार
water	पानी

इन रूढ़ शब्दों की समनुरूपता स्वतः स्पष्ट है – ये शब्द केवल धातु से बने हैं। ये रूढ़ शब्द अपने आप में अनुवाद की इकाई हैं। अनुवाद की इकाई के रूप में ऐसे शब्दों का अनुवाद सामान्यतः कोई समस्या उत्पन्न नहीं करता है।

(ख) समनुरूप यौगिक शब्द : रूढ़ शब्द की धातु में प्रत्यय अथवा उपसर्ग लगाकर यौगिक शब्द बनाए जाते हैं। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के उन यौगिक शब्दों को जिनकी संरचना में समानता है 'समनुरूप यौगिक शब्द' कहा जा सकता है। समनुरूप यौगिक शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

अंग्रेजी	हिंदी
coexistence	सह-अस्तित्व
devaluation	अवमूल्यन
over-anxiety	अतिचिंता
parliamentary	संसदीय
prehistoric	प्रागैतिहासिक
social	सामाजिक
undeveloped	अविकसित

यहाँ पर दोनों भाषाओं के घटकों का क्रम एक जैसा है। ये यौगिक शब्द भी अपने आप में अनुवाद की अलग-अलग इकाइयाँ हैं। यदि दोनों भाषाओं में समान अर्थ वाले उपसर्ग अथवा प्रत्यय हैं तो इस प्रकार के शब्दों का अनुवाद सामान्यतः कोई समस्या उत्पन्न नहीं करता है।

हिंदी में शब्दावली-निर्माण अधिकांशतः इसी पद्धति से हो रहा है और इस तरह के शब्दों की संख्या हजारों में होगी। भाषाओं का पारस्परिक संपर्क बढ़ते जाने से समनुरूप यौगिक शब्दों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

(ग) समनुरूप मुक्त पदबंध : जिस पदबंध में प्रत्येक पद की स्वतंत्र सत्ता होती है उसे मुक्त पदबंध कहा जाता है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में पदों की स्वतंत्र सत्ता वाले पदबंधों को हम 'समनुरूप मुक्त पदबंध' कह सकते हैं। सामान्य रूप से प्रयोग में आने वाले स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पदबंधों या शब्दबंधों में प्रायः समनुरूपता दिखाई देती है, जैसे :

अंग्रेजी	हिंदी
Air Force	वायु सेना
armed conflict	सशस्त्र संघर्ष
Armed Police	सशस्त्र पुलिस
Income Tax	आय कर

Iron ore	लौह अयस्क
Life Insurence	जीवन बीमा
Commerce Ministry	वाणिज्य मंत्रालय
Transport Ministry	परिवहन मंत्रालय

इन पदबंधों के घटकों में अर्थ की पूर्ण समानता है। इन पदबंधों का प्रत्येक घटक अनुवाद की एक अलग इकाई है। मुक्त पदबंध के घटकों का अनुवाद एक-एक पद को लेकर किया जाता है। फिर भी मुक्त पदबंध को हमने अनुवाद की इकाई माना है क्योंकि इसके घटक एक विशेष व्याकरणिक संबंध में बँधे होते हैं। अनुवाद करते समय इस व्याकरणिक संबंध का निर्वाह करना आवश्यक होता है। ऐसे समनुरूप मुक्तक पदबंध भी अनुवादक के लिए कोई विशेष समस्या पैदा नहीं करते हैं।

(घ) समनुरूप रूढ़ पदबंध : इससे भिन्न स्थिति ऐसे समनुरूप पदबंधों में देखी जा सकती है जिनमें अर्थ की समानता तो होती है परंतु उनके किसी भी घटक को किसी अन्य पर्याय के द्वारा बदला नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए Cold War के लिए हिंदी में 'शीत युद्ध' पदबंध का प्रयोग होता है। इनमें से प्रत्येक घटक अंग्रेजी के शब्दों के समनुरूप तो है परंतु इस पदबंध के किसी भी घटक को उसके किसी अन्य पर्यायवाची शब्द के द्वारा बदलना संभव नहीं है, जैसे 'ठंडी लड़ाई।' कहने का तात्पर्य यह है कि अंग्रेजी का पूरा पदबंध Cold War अपने आप में अनुवाद की इकाई है। जिस पदबंध के किसी पद को उसके किसी अन्य समानक के द्वारा बदला नहीं जा सकता है उसे 'रूढ़ पदबंध' कहा जा सकता है। हिंदी का 'गंगा जल' भी रूढ़ पदबंध है जिसका अंग्रेजी में अनुवाद संभव नहीं है। तदनुसार, स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के ऐसे पदबंधों को जिनके पदों को किसी अन्य समानक के द्वारा बदला नहीं जा सकता है हम 'समनुरूप रूढ़ पदबंध' कह सकते हैं। रूढ़ पदबंध के घटकों का अनुवाद उसके पदों को एक साथ लेकर किया जाता है। समनुरूप रूढ़ पदबंधों के कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं :

अंग्रेजी	**हिंदी**
Civil Disobedience	सविनय अवज्ञा
Dearness Allowance	महंगाई भत्ता
Spaceman	अंतरिक्ष-यात्री

अंग्रेजी के Prime Minister 'प्रधानमंत्री' और Chief Minister 'मुख्यमंत्री' का शाब्दिक अर्थ तो एक ही है परंतु ये दोनों पदबंध अलग-अलग अर्थों में रूढ़ हो गए हैं। इसलिए रूढ़ पदबंधों का अनुवाद करते समय उचित समानक का चयन महत्वपूर्ण होता है, अन्यथा अनुवाद त्रुटिपूर्ण हो सकता है।

2. असमनुरूपता

अनुवाद की इकाइयों में 'असमनुरूपता' से तात्पर्य है – स्रोत भाषा के प्रत्येक घटक के लिए लक्ष्य भाषा में समनुरूप घटकों का न होना। इस प्रकार की असमनुरूपता के दो प्रकार हो सकते हैं – आंशिक असमनुरूपता; और पूर्ण असमनुरूपता। अनुवाद की इकाइयों की ये असमनुरूपताएँ भी शब्दों, पदबंधों और रूढ़ अभिव्यक्तियों में देखी जा सकती है। अनुवाद की असमनुरूप इकाइयों की चर्चा आगे की जा रही है।

(i) असमनुरूप रूढ़ शब्द : असमनुरूप रूढ़ शब्द स्रोत भाषा की ऐसी इकाई है जिसके लिए लक्ष्य भाषा में यौगिक शब्द का प्रयोग होता है, जैसे :

अंग्रेजी	हिंदी
nature	प्रकृति
story	कहानी

इस तरह के शब्द अनुवाद में समस्या नहीं पैदा करते हैं।

(ii) असमनुरूप यौगिक शब्द : स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के समनुरूप यौगिक शब्दों की संरचना में असमानता भी हो सकती है अर्थात् उनके घटकों में समानता होते हुए भी उनका क्रम भिन्न, असमान हो सकता है, जैसे :

अंग्रेजी	हिंदी
pre-addiction	व्यसन-पूर्व
pre-criminal	अपराध-पूर्व
pre-election	चुनाव-पूर्व

यहाँ पर अंग्रेजी के यौगिक शब्दों में उपसर्ग 'pre' का प्रयोग हुआ है जबकि हिंदी में प्रत्यय 'पूर्व' का प्रयोग हुआ है। इसी तरह anti-corruption – 'भ्रष्टाचार विरोधी', anti-national – 'राष्ट्र-विरोधी' शब्दों में अंग्रेजी में उपसर्ग 'anti' का प्रयोग हुआ है जबकि हिंदी में 'विरोधी' शब्द का प्रत्ययवत् प्रयोग हुआ है; अंग्रेजी के spotless – 'बेदाग' शब्द में 'less' प्रत्यय आया है जबकि हिंदी में 'बे' उपसर्ग आया है। असमान संरचना वाले स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के यौगिक शब्दों को हम 'असमनुरूप यौगिक शब्द' कह सकते हैं। ये यौगिक शब्द भी अपने आप में अनुवाद की अलग-अलग इकाई होते हैं। अनुवाद की इकाई के रूप में असमान क्रम वाले यौगिक शब्दों की ओर अनुवादक को विशेष ध्यान देना पड़ता है, अन्यथा उसका अनुवाद शाब्दिक हो सकता है और उससे अर्थ की हानि भी हो सकती है।

(iii) आंशिक असमनुरूप रूढ़ पदबंध : कुछ रूढ़ पदबंध ऐसे भी हाते हैं जिनके घटक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में आंशिक रूप से समान होते हैं, जैसे :

अंग्रेजी	हिंदी
China ink	काली स्याही
easy chair	आराम कुर्सी
Indian ink	काली स्याही
Morning star	शुक्र तारा, भोर का तारा
revolution by evolution	विकासमूलक क्रांति
rigorous imprisonment	सश्रम कारावास
society dominated by men	पुरुषप्रधान समाज

इन उदाहरणों में घटकों की आंशिक समानता को रेखांकित करके दिखाया गया है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के आंशिक रूप से असमान संरचना वाले रूढ़ पदबंधों को हमने 'आंशिक असमनुरूप रूढ़ पदबंध' कहा है। इस तरह के पदबंधों का अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा में अमुक पदबंध में प्रचलित शब्द रूढ़ का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे पदबंधों के अनुवाद में अनुवादक अपनी ओर से किसी भी समानक का चयन करने को स्वतंत्र नहीं होता है। इसलिए आंशिक असमनुरूप रूढ़ पदबंध में उचित शब्द के प्रयोग की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

(iv) पूर्ण असमनुरूप रूढ़ पदबंध : स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के कुछ रूढ़ पदबंध परस्पर पूरी तरह भिन्न भी हो सकते हैं, जैसे :

अंग्रेजी	हिंदी
Milky Way	आकाश गंगा
The Great Bear	सप्तर्षि मंडल
Ursa Major	सप्तर्षि मंडल

इस तरह के असमान घटकों वाले रूढ़ पदबंधों को हमने 'पूर्ण असमनुरूप रूढ़ पदबंध' कहा है।

'पूर्ण असमनुरूप रूढ़ पदबंधों' के अंतर्गत स्रोत भाषा के ऐसे पदबंध भी शामिल किए जा सकते हैं जिनके लिए लक्ष्य भाषा के स्वतंत्र शब्द का प्रयोग होता है, न कि पदबंध का। उदाहरण के लिए – dry fruits 'मेवे', horse whip 'चाबुक', outer space 'अंतरिक्ष', sarcastic comment 'कटाक्ष', 'ताना' आदि।

भाषाओं का पारस्परिक संबंध बढ़ते जाने से असमनुरूप रूढ़ पदबंधों का प्रयोग कम होता जा रहा है क्योंकि परस्पर संपर्क वाली भाषाओं में समनुरूपता की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसी कारण से 'सूखे मेवे' (=dry fruits), 'बाह्य अंतरिक्ष' (=outer space) जैसे अशुद्ध पदबंधों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

पूर्ण असमनुरूप रूढ़ पदबंधों का अनुवाद उनके घटकों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। लक्ष्य भाषा में उनके लिए जो समानक प्रचलित और स्वीकृत हैं, केवल उन्हीं का प्रयोग अनुवादक को करना चाहिए।

3. रूढ़ अभिव्यक्तियाँ

'अंशविभाजन के आधार' पर विचार करते हुए यह बताया गया है कि प्रत्येक भाषिक समुदाय में वाक्शिष्टाचार की – अभिनंदन, स्वागत, विदाई, शुभकामना आदि की – कुछ विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ प्रचलित होती हैं। इन अभिव्यक्तियों को हम 'रूढ़ अभिव्यक्तियाँ' मान सकते हैं क्योंकि इनका प्रयोग एक बने-बनाए निश्चित रूप में होता है। इन अभिव्यक्तियों का अनुवाद भी पूरी एक इकाई के रूप में करना पड़ता है। इसलिए लक्ष्य भाषा में उनके लिए जो समानक प्रचलित और स्वीकृत हैं, केवल उन्हीं का प्रयोग अनुवादक को करना होता है। ये पूरी तरह से समनुरूप भी हो सकती है। आंशिक असमनुरूप भी और पूर्ण असमनुरूप भी। इनके बारे में आगे चर्चा की जा रही है।

(क) समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ : स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की जिन रूढ़ अभिव्यक्तियों के घटकों में समानता होती है उन्हें हम 'समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ' कह सकते हैं। समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ पदबंधों के रूप में भी प्रयुक्त होती हैं और वाक्यों के रूप में भी। समनुरूप रूढ़ पदबंधों की तरह समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियों के घटकों अर्थात् पदों में भी कोई बदलाव नहीं किया जा सकता है।

पदबंधों की तरह प्रयुक्त समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

अंग्रेजी	हिंदी
Happy Birthday	जन्मदिन मुबारक
Happy New Year	नया साल मुबारक
With compliments	शुभकामना(ओं) सहित

वाक्य की तरह प्रयुक्त समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्ति का उदाहरण है – How are you? किसी का हालचाल पूछने के लिए अंग्रेजी की यह अभिव्यक्ति हिंदी की अभिव्यक्ति 'आप कैसे हैं?' के समनुरूप है। इसलिए ये दोनों समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी तरह I wish your success के लिए 'मैं आपकी सफलता की कामना करता/करती हूँ।' भी समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ हैं।

(ख) आंशिक असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ : जिन रूढ़ अभिव्यक्तियों के घटकों में आंशिक समानता होती है उन्हें हम 'आंशिक असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ' कह सकते हैं। किसी का हालचाल पूछने के लिए अंग्रेजी में (How are you? के अतिरिक्त) How do you do? अभिव्यक्ति का प्रयोग भी किया जाता है जबकि हिंदी में 'आप कैसे

हैं?' का प्रयोग किया जाता है जिसकी अंग्रेजी की इस अभिव्यक्ति के साथ आंशिक समानता है। इसलिए ये आंशिक असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ हैं।

आंशिक असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियों का अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा में प्रचलित और स्वीकृत अभिव्यक्तियों का ही प्रयोग किया जा सकता है।

(ग) पूर्ण असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ : जिन रूढ़ अभिव्यक्तियों के घटकों में पूर्ण असमानता होती है उन्हें हम 'पूर्ण असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ' कह सकते हैं। किसी का हालचाल जानने के लिए हिंदी में 'क्या हालचाल है?' अभिव्यक्ति का प्रयोग होता है जिसके समानक के रूप में अंग्रेजी में How are you? अथवा How do you do? अभिव्यक्ति का प्रयोग किया जाता है। हिंदी और अंग्रेजी की इन अभिव्यक्तियों में पूर्ण असमानता है। इसलिए ये पूर्ण असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ हैं। असमान घटकों वाली रूढ़ अभिव्यक्तियों के कुछ अन्य उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

अंग्रेजी	हिंदी
Good Morning	नमस्ते
Many Happy Returns of the Day	जन्म दिन मुबारक

आंशिक असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियों का अनुवाद करते समय भी लक्ष्य भाषा में प्रचलित और स्वीकृत अभिव्यक्तियों का ही प्रयोग किया जा सकता है।

4. लोकोक्तियाँ

लोकोक्ति अथवा कहावत सामान्यतः अपने आप में पूरा वाक्य होती है, इसलिए यह वाक्य के स्तर की अनुवाद की इकाई है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की लोकोक्तियों में भी समनुरूपता और असमनुरूपता हो सकती है। सभी लोकोक्तियाँ रूढ़ होती हैं और उनके घटकों को बदला नहीं जा सकता है। लक्ष्य भाषा की उचित लोकोक्तियों का चयन और उन्हें ढूँढ निकालना ही अनुवादक के सामने बड़ी चुनौती होती है। हिंदी में द्विभाषिक लोकोक्ति कोशों का अभाव इस समस्या को और भी जटिल बना देता है। इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय कहावत कोश है – य.वि. नरवणे द्वारा बनाया गया 'भारतीय कहावत संग्रह' पुणे, जो अब उपलब्ध नहीं है। यह कहावत कोश तीन खंडों में है और इसका प्रकाशन सत्तर के दशक में हुआ था। यहाँ पर हम गुलाब भाटी द्वारा बनाए गए 'जर्मन-हिंदी कहावत कोश' (जर्मन विद्यापीठ प्रकाशन, मकान नंबर 435, थर्ड सी रोड, सरदारपुरा, जोधपुर-342003, संस्करण 1991, पृष्ठ संख्या 432) का भी उल्लेख कर सकते हैं जो किसी विदेशी भाषा के साथ बनाया गया हिंदी का संभवतः एकमात्र कहावत कोश है।

अनुवाद करते समय अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में परस्पर पूर्ण

समनुरूप, आंशिक रूप से असमनुरूप और पूर्ण असमनुरूप लोकोक्तियाँ मिल सकती हैं। दोनों भाषाओं (अर्थात् स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा) की लोकोक्तियों के घटक इन समानताओं-असमानताओं के आधार हैं। आगे हम इन पर विचार कर रहे हैं।

(i) पूर्ण समनुरूप लोकोक्तियाँ : समान घटकों वाली स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की लोकोक्तियों को हम 'पूर्ण समनुरूप लोकोक्तियाँ' कह सकते हैं। उदाहरण के लिए :

अंग्रेजी	हिंदी
All is well that ends well	अंत भला तो सब भला
Little drops make the ocean	बूँद-बूँद करके तालाब भरता है
Necessity is mother of invention	आवश्यकता आविष्कार की जननी है।[1]

(ii) आंशिक असमनुरूप लोकोक्तियाँ : आंशिक रूप से असमान घटकों वाली स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की लोकोक्तियों को हम 'आंशिक असमनुरूप लोकोक्तियाँ' कह सकते हैं। उदाहरण के लिए :

अंग्रेजी	हिंदी
All that glitters is not gold	हर पीली चीज़ सोना नहीं होती
Distant lands charm the viewer	दूर के ढोल सुहावने
Forbidden fruit is sweet	चोरी का गुड़ मीठा होता है
Haste makes waste	जल्दी का काम शैतान का
Out of sight, out of mind	आँख ओझल, पहाड़ ओझल

(iii) पूर्ण असमनुरूप लोकोक्तियाँ : स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की जिन लोकोक्तियों के सभी घटक असमान होते हैं उन्हें हम 'पूर्ण असमनुरूप लोकोक्तियाँ' कह सकते हैं। उदाहरण के लिए :

अंग्रेजी	हिंदी
Blood is thicker than water	अपना-अपना, पराया-पराया
Charity begins at home	पहले अपने, फिर पराए
Evil gotten, evil spent	चोरी का माल मोरी में
Haste makes waste	आगे दौड़, पीछे चौड़
It takes two to make a row	एक हाथ से ताली नहीं बजती
It takes two to make a quarrel	एक हाथ से ताली नहीं बजती
Penny wise, pound foolish	अशर्फियों की लूट, कोयलों पर मुहर

1. यह लोकोक्ति वास्तव में अंग्रेजी से अनूदित लोकोक्ति है, हिंदी की अपनी लोकोक्ति नहीं है।

निष्कर्ष

ऊपर अनुवाद की प्रमुख इकाइयों को समझाया गया है जो इस प्रकार है – (1) समनुरूप रूढ़ शब्द, (2) समनुरूप यौगिक शब्द, (3) समनुरूप मुक्त पदबंध, (4) समनुरूप रूढ़ पदबंध, (5) असमनुरूप रूढ़ शब्द, (6) असमनुरूप यौगिक शब्द, (7) आंशिक असमनुरूप रूढ़ पदबंध, (8) पूर्ण असमनुरूप रूढ़ पदबंध, (9) समनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ, (10) आंशिक असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ, (11) पूर्ण असमनुरूप रूढ़ अभिव्यक्तियाँ, (12) पूर्ण असमनुरूप लोकोक्तियाँ, (13) आंशिक असमनुरूप लोकोक्तियाँ; और (14) पूर्ण असमनुरूप लोकोक्तियाँ। अनुवाद की इकाइयों का यह वर्गीकरण स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में उनकी समानता और असमानता पर आधारित है। इस समानता और असमानता को हमने समनुरूपता और असमनुरूपता कहा है। इस प्रकार समनुरूपता और असमनुरूपता द्वारा निर्धारित अनुवाद की इन इकाइयों का अपना-अपना महत्व है और इसीलिए मूलपाठ का अनुवाद करते समय इन इकाइयों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। इसी दृष्टि से अनुवाद के मूलपाठ का अंशविभाजन किया जाता है और उसकी इकाइयों को अलग किया जाता है। अनुवाद की इकाइयों की यही विशिष्टता है।

❑

डॉ. सत्येंद्र सिंह

कोश की विशेषताएँ

मानव की विकास यात्रा में उसका संपूर्ण कार्य व्यापार भाषा पर आधारित है। भाषा मनुष्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भाषा के माध्यम से जो भी अभिव्यक्ति होती है, उसका महत्वपूर्ण उपादान वाक्य है। अर्थात् मनुष्य का सोचना, बोलना अथवा किसी भाव अथवा विचार का ग्रहण करना वाक्य में होता है। इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि यह संप्रेषण तथा भाव ग्रहण – भाषा के इन दोनों प्रकार्यों को संपन्न करने में सहायक होती है। भाषाविज्ञान में वाक्य के अध्ययन और विश्लेषण के लिए वाक्य विज्ञान जैसी एक संपूर्ण शाखा की प्रतिष्ठा की गई है। स्रोत भाषा में कही हुई बात को लक्ष्य भाषा में निकटतम, सहज, समतुल्य, अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। इस निकटतम, सहज और समतुल्य पर्याय की खोज की प्रक्रिया में अनुवादक को मूल पाठ को सावधानीपूर्वक पढ़ते हुए तथा विषय और भाषा दोनों ही दृष्टि से उसका विश्लेषण करते हुए अर्थ की प्रतीति के लिए अनुवादक को वाक्य के विभिन्न घटकों (कर्ता, क्रिया, कर्म, विशेषण, अव्यय, पदों और पदबंधों तथा उपवाक्यों) के परस्पर संबंधों का विश्लेषण करता है तथा तदनुसार अर्थ ग्रहण करता है। अर्थ ज्ञान के लिए अर्थ ग्रहण के साधनों में कुछ महत्वपूर्ण साधन निम्नलिखित हैं :

1. व्याकरण
2. उपमान
3. कोश
4. आप्तवाक्य (अनुभवी और विषय विशेषज्ञों से मार्गदर्शन)
5. लोक व्यवहार
6. वाक्य-शेष (प्रकरण)
7. विवृत्ति (विस्तार)

8. अन्य पद से सान्निध्य

अर्थ ज्ञान के उपर्युक्त साधनों में 'कोश' सबसे महत्वपूर्ण एवं अविकल्पनीय साधन है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जिस तरह हिंदुओं के लिए रामायण, गीता; मुस्लिमों के लिए कुरान; इसाईयों के लिए बाईबिल; और सिक्खों के लिए गुरु ग्रंथ साहिब का महत्व है उसी प्रकार एक अनुवादक के लिए कोश का महत्व है।

अतः कोश एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अतुलनीय अर्थ साधन है। अच्छे कोश में निम्नलिखित विशेषताओं का होना अनिवार्य है :

1. कोश का उद्देश्य भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों, शब्दांशों, समस्त शब्दों (compounds), व्युत्पन्न शब्दों (Derivatives), पदबंधों (Phrases) और मुहावरों (Idioms) के संबंध में भाषिक जानकारी प्रदान करना है। चूँकि कोश में लघुतम अर्थवान शब्दांश से लेकर अनेक शब्दों के पदबंधों तक की भाषिक जानकारी प्रदान की जाती है, इसलिए कोश के संदर्भ में हम इन्हें 'प्रविष्टि' (Entry) कहते हैं, जिसमें इन सबका समावेश हो जाता है।
2. चूँकि कोश का कार्य प्रविष्टियों के संबंध में भाषिक जानकारी मात्र देना है। इसलिए इसमें भाषिकेतर जानकारी के लिए कोई स्थान नहीं, क्योंकि उसका उपयुक्त स्थान विश्वकोश (Encyclopaedia) है, कोश नहीं।
3. कोश का कार्य विधान (Prescribe) करना नहीं, यथातथ्य भाषिक विवरण प्रस्तुत करना है। अतः कोश में शब्दों के संबंध में यह निर्देश नहीं किया जाना चाहिए कि किस प्रविष्टि का प्रयोग शिष्ट है और किसका ग्राह्य, कौन-सा प्रयोग ग्राह्य है और कौन सा अग्राह्य, क्या मानक है और क्या अमानक। प्रयोग के लिए प्रविष्टि का चुनाव प्रयोक्ता की इच्छा, आवश्यकता और संदर्भ पर निर्भर करेगा, कोशकार के एकतरफा निर्णयों पर नहीं। कोशकार भाषा का नियामक नहीं है और न ही विधायक। उसका कार्य केवल भाषिक तथ्यों को यथावत् प्रस्तुत करना है; चयन, व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होने के कारण प्रयोक्ता पर निर्भर करता है।
4. कोश, निर्माण के उद्देश्य के अनुसार, वर्णनात्मक (Descriptive) अथवा ऐतिहासिक (Historical) हो सकता है। वर्णनात्मक में भाषा का वर्तमान रूप प्रस्तुत किया जाता है जबकि ऐतिहासिक में प्रविष्टियों के रूप और अर्थ का ऐतिहासिक विकास दिखाया जाता है।
5. कोश में प्रविष्टियाँ स्रोत भाषा को मान्य लिपि के वर्णक्रम के अनुसार की जाती है तथा प्रत्येक पृष्ठ में ऊपरी हाशिए में बाईं से दाईं ओर सूचक शब्द (Index words) रहते हैं जो इस बात के द्योतक होते हैं कि पृष्ठ पर बाईं ओर के सूचक

शब्द से लेकर दाईं ओर के सूचक शब्द तक की प्रविष्टियाँ हैं।

6. कोश में प्रविष्टियाँ उसके आगे दी जाने वाली भाषिक जानकारी की तुलना में भिन्न टाइप फेस और टाइप साइज में दी जानी चाहिएँ ताकि वे शब्द के सामने दी गई भाषिक जानकारी से अलग दिखाई दें।
7. प्रविष्टियों की वर्तनी वही होनी चाहिए जोकि सर्वाधिक मान्य हो। जहाँ कोई भिन्न वर्तनी भी समान रूप से मान्य हो, वहाँ वह भी इस तथ्य के उल्लेख के साथ दी जानी चाहिए।
8. प्रत्येक प्रविष्टि के आगे उसका प्रचलित उच्चारण दिया जाना चाहिए। किसी भी शब्द का एक ही ध्वन्यात्मक उच्चारण होता है, लेकिन सभी व्यक्तियों का उच्चारण कभी एक नहीं हो सकता, अलबत्ता परस्पर सदृश अवश्य हो सकता है। सदृश उच्चारण का द्योतन (स्वनिम) (Phoneme) की संकल्पना के आधार पर किया जाता है जोकि विशुद्ध वैज्ञानिक आधार पर उच्चारणकर्त्ता के भेद से भिन्न-भिन्न होने पर भी भिन्नता की सूक्ष्मता और स्वल्पता के कारण सदृश प्रतीत होता है, अतः एक मान लिया जाता है।
9. यह बताने के लिए उच्चारण स्वनिमिक है, उच्चारण को दो आड़ी रेखाओं के बीच / / दिया जाना चाहिए।
10. उच्चारण के द्योतन के लिए कोश में दिए जाने वाले 'उच्चारण संकेत' कुंजी (Key to pronunciation) के रूप में कोश की जिल्द के निरंक fly leaf पृष्ठ पर अथवा जैसी पद्धति चैम्बर्स कोश पर अपनाई गई है हर दूसरे पृष्ठ पर पाद-टिप्पणी के रूप में दिए जाते हैं।
11. एक या एक से अधिक रूपिम वाले शब्दों के मामले में रूपिमों को एक-दूसरे से अलग दिखाने के लिए उनके बीच का स्थान खाली छोड़ना चाहिए, ताकि साफ जाना जा सके कि शब्द में कितने रूपिम हैं तथा देखने मात्र से उनकी पृथकता और शब्द के वचन (Number) और रूपिमों की संख्या साफ प्रकट हो।
12. कई बार प्रविष्टि को उच्चारण प्रयत्न के अनुसार उसमें विद्यमान अक्षरों Syllables की संख्या के अनुसार अलग-अलग अक्षरों में विभाजित करना पड़ता है, जिसे अक्षर विभाजन (Syllabic division) कहा जाता है। अक्षर एक साँस में उच्चारित वर्ण-समुच्चय है, जिसमें अक्षर-सीमा के अनुसार एक या एक से अधिक स्वर उच्चरित होते हैं। यह विभाजन एक साँस में एक साथ उच्चरित होने वाले वर्णों को एक साथ उच्चरित होने वाले अन्य वर्णों या वर्ण समुच्चयों से पृथक-पृथक दिखाने के लिए आवश्यक है।

13. प्रत्येक प्रविष्टि के आगे उसकी व्युत्पत्ति दी जानी चाहिए, ताकि उसका मूल अर्थ स्पष्ट हो सके। व्युत्पत्ति में शब्द का उद्गम (origin), निष्पत्ति (Word formation) अथवा प्रकृति-प्रत्यय विभाजन और निरूपित (Somantic analysis) दिया जाता है।
14. प्रत्येक प्रविष्ट के आगे उसकी व्याकरणिक कोटि (Grammatical category) का निर्देश होना चाहिए। जहाँ व्याकरिणक कोटि के अनुसार प्रविष्टि की लिंग, वचन, पुरुष और काल संबंधी किसी अपर्याप्तता का उल्लेख प्रयोग को स्पष्टता के लिए करना आवश्यक हो, वहाँ उसका उल्लेख अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। Zero modification एक उपयोगी युक्ति है, जिससे व्याकरिणक अपर्याप्तता को स्पष्ट किया जा सकता है।
15. जहाँ तक प्रविष्टियों के अर्थ का संबंध है, किसी प्रविष्टि के यदि एक से अधिक अर्थ हों तो उन्हें वर्णनात्मक पद्धति से प्रयोग की व्यापकता, बहुलता और आवृत्ति (Frequency) के अनुसार पहले या बाद में दिया जाना चाहिए। यदि कोश का आधार ऐतिहासिक हो तो कालक्रम की दृष्टि से पहले प्रयुक्त अर्थ को पहले और बाद में प्रयुक्त अर्थों को बाद में दिया जाना चाहिए।
16. प्रविष्टि का अर्थ-परिभाषा, पर्याप्त अथवा चित्र या आरेख द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए।
17. प्रविष्टि का जो अर्थ दिया जाए उसकी पुष्टि वाक्य में उसके प्रयोग द्वारा की जानी चाहिए। साथ ही प्रयोग को प्रामाणिकता के लिए उसके स्रोत, प्रयोक्ता का नाम और काल का उल्लेख करना भी आवश्यक है, जिससे यह प्रकट हो कि प्रयोग प्रामाणिक या प्रमाण-पुष्टि (attested) है, कल्पना-प्रसूत या मनगढ़ंत नहीं।
18. उदाहरण के बाद अन्य शब्दों अथवा शब्दांशों के साथ प्रविष्टि के योग से बने समस्त शब्द (compounds) और उनके अर्थ दिए जाने चाहिए।
19. तत्पश्चात प्रविष्टि से व्युत्पन्न (derived) शब्द और उनके अर्थ दिए जाने चाहिए।
20. व्युत्पन्न शब्दों के बाद पदबंध और उनके विशिष्ट अर्थ दिए जाने चाहिए।
21. पदबंधों के बाद लाक्षणिक अथवा अलंकारिक (figurative) प्रयोग दिए जाने चाहिए और उनके अर्थ स्पष्ट किए जाने चाहिए।
22. अनंतर अन्य पर्याय (Synonyms) दिए जाने चाहिए।
23. पर्यायों के बाद विलोम (antonyms) दिए जाने चाहिए।
24. कोश के प्रारंभ में पूर्वपीठिका के रूप में कोश के सृजन का उद्देश्य, कोश-विज्ञान के व्यवहृत सिद्धांत और कोश-निर्माण की प्रक्रिया का निर्देश दिया जाना चाहिए।

25. जिस भाषा का कोश है, उसकी भाषा-वैज्ञानिक पृष्ठभूमि तथा उसके विकास का इतिहास और उसकी विशेषताओं का निर्देश होना चाहिए।

26. कोश निर्माण में जिन अन्य कोशों, ग्रंथों और सामग्री का आश्रय लिया गया हो उनका उल्लेख करना चाहिए और संकेत तालिका दी जानी चाहिए।

27. कोश विन्यास, कोश में प्रयुक्त संकेत और कोश का अवलोकन करते समय ध्यान में रखी जाने वाली बातों का भी यथास्थान उल्लेख होना चाहिए।

निष्कर्षतः किसी कोश में ये सारी विशेषताएँ सामान्यतः एक साथ नहीं मिलतीं। अतः आवश्यकतानुसार अन्य कोश भी देखे जाने चाहिए ताकि किसी प्रविष्टि के संबंध में ऊपर उल्लिखित भाषिक जानकारी सभी उपलब्ध स्रोतों से प्राप्त की जा सके।

❑

डॉ. हरीश कुमार सेठी

संसद की भाषाएँ और अनुवाद

भारत एक बहुभाषा-भाषी देश है। यहाँ की बहुभाषिकता की एक समृद्ध-संपन्न परंपरा रही है। बहुभाषिकता की इस स्थिति में हिंदी केंद्र में कही जा सकती है। हिंदी लंबे समय से संपर्क भाषा की भूमिका निभाती चली आ रही है। इसका प्रयोक्ता वर्ग यानी इसे बोलने और समझने वाले लोग संख्या की दृष्टि से बहुत अधिक हैं। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी भावात्मक एकता का आधार बन कर उभरी थी। इसीलिए आज़ादी के बाद हिंदी को राजभाषा बनाया गया। राजभाषा का अर्थ है—राजकाज की भाषा। राजकाज की भाषा वह होती है जिसका देश की शासन-व्यवस्था का सुचारु ढंग से चलाने के लिए प्रयोग किया जाता है। सरकारी पत्र-व्यवहार, प्रशासन, न्याय-व्यवस्था एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए राजभाषा का प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर जहाँ कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary) राजभाषा के दो प्रमुख क्षेत्र हैं, वैसा ही एक प्रमुख क्षेत्र है—विधायिका। भारत के संविधान के अनुसार संघ के स्तर पर विधायन (अर्थात् कानून बनाने) की शाक्ति संसद को प्राप्त है। वैसे, अगर संसद का सत्र नहीं चल रहा होता तो विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है, लेकिन उस अध्यादेश को भी अगले छह महीनों के भीतर संसद से पारित करना अनिवार्य होता है।

संसद में प्रयोग की भाषाएँ

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले केंद्रीय विधानसभा में अंग्रेज़ी का बोलबाला था। केंद्रीय विधानसभा की पूरी कार्यवाही अंग्रेज़ी भाषा में ही होती थी। सदस्यों को केवल अध्यक्ष अथवा सभापति की अनुमति से ही हिंदुस्तानी में बोलने की अनुमति थी। स्वतंत्रता के पश्चात् भी अधिकांश सदस्य अंग्रेज़ी ही प्रयुक्त करते थे। लेकिन धीरे-धीरे इस स्थिति में बदलाव आना शुरु हुआ। अब स्थिति यह हो चुकी है कि काफ़ी अधिक सदस्य

न केवल हिंदी का प्रयोग करते हैं बल्कि अपनी मातृभाषा में भी भाषण देते हैं।

अगर हम संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधानों पर विचार करें तो यह पाते हैं कि इसके अनुच्छेद 343-351 में राजभाषा संबंधी उपबंध हैं। इनमें से अनुच्छेद 343 संघ की राजभाषा से संबंधित है और अनुच्छेद 345 राज्य की राजभाषा/राजभाषाओं से। अनुच्छेद 346 में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा संबंधी व्यवस्था है और अनुच्छेद 347 में किसी राज्य की जनसंख्या के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध। अनुच्छेद 348 उच्चतम न्यायालय , उच्च न्यायालय आदि की भाषा से संबंधित है और अनुच्छेद 351 हिंदी भाषा के विकास संबंधी निर्देश से। स्पष्ट है कि इन सभी अनुच्छेदों में मुख्यतः कार्यपालिका और न्यायपालिका की भाषा संबंधी उपबंध शामिल हैं। संविधान के अनुच्छेद 343 (1) में जहाँ हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है, वहीं साथ ही अनुच्छेद 345 में संसद एवं राज्य विधानमंडलों को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वे हिंदी को अपने-अपने राज्यों की राजभाषा के रूप में अपनाएँ।

राजभाषा संबंधी उक्त व्यवस्था के साथ-साथ संविधान निर्माताओं ने संसद की भाषा पर अलग से प्रावधान किए हैं। इसका मूलभूत कारण यह रहा है कि बहुभाषा-भाषी भारत के जन-प्रतिनिधि (अर्थात् सांसद) किसी एक भाषा को बोलने वाले नहीं होंगे। संविधान के अनुच्छेद 120 में संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा संबंधी व्यवस्था है और अनुच्छेद 210 में विधानमंडलों में प्रयुक्त होने वाली भाषा की। संविधान में यह प्रावधान निम्न प्रकार से किया गया है :

120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा : (1) भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेज़ी में किया जाएगा :

परंतु, यथास्थिति, राज्य सभा का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेज़ी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो 'या अंग्रेज़ी में' शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।''

इसी प्रकार, राज्य विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में अनुच्छेद 210 में भी यह निम्नलिखित व्यवस्था की गई है कि भाग 17 में किसी बात के होते

हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेज़ी में किया जाएगा। इसमें यह भी कहा गया है कि विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो पूर्वोक्त भाषाओं में से किसी भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, उसकी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा। इसके अलावा, यह भी व्यवस्था है कि जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो 'या अंग्रेज़ी में' शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।

स्पष्ट है कि उक्त संवैधानिक व्यवस्था के आधार पर संसदीय कार्यों की भाषा अंग्रेज़ी अथवा हिंदी है। विशेष बात यह है कि संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा संबंधी अनुच्छेद के खंड 2 में यह प्रावधान किया गया है कि 26 जनवरी 1965 से संसद की कार्यवाही केवल हिंदी में ही निष्पादित होगी, बशर्ते कि संसद विधि द्वारा अन्यथा व्यवस्था न कर ले। किंतु राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3 में यह व्यवस्था है कि संसद के कार्य में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग जारी रहेगा। इसके अलावा, इस अधिनियम की धारा 3(3) में यह कहा गया है कि सभी महत्त्वपूर्ण शासकीय दस्तावेज़ हिंदी और अंग्रेज़ी, दोनों भाषाओं में जारी किए जाएँगे। इन उपबंधों के अनुसार राजभाषा के क्षेत्र में द्विभाषिकता की यह स्थिति संसद में भी नज़र आती है, जिसके चलते सरकार अपने सभी प्रतिवेदन एवं काग़ज़ात संसद के समक्ष अंग्रेज़ी और हिंदी, दोनों भाषाओं में रखती है। राजभाषा की इस द्विभाषिकता के कारण संसद में अंग्रेज़ी एवं हिंदी का अपना स्थान है, साथ ही वहाँ अनुवाद की आवश्यकता, महत्त्व एवं उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। इसका मूल कारण यह है कि हिंदी में ही समस्त कार्य करने की असंभाव्यता ने अनुवाद की आवश्यकता को अपरिहार्य बना दिया है।

संसद में अनुवाद की अपरिहार्यता एवं आयाम

संसद में किए जाने वाले कार्य नैमित्त प्रकृति के भले ही प्रतीत होते हैं, लेकिन वे स्वयं में बहु-आयामी हैं। संसद के सत्र का आरंभ राष्ट्रपति के अभिभाषण से होता है। इसके बाद अन्य सभी कार्य प्रतिदिन की कार्यवाही का अंग होते हैं। जिन दिनों संसद का सत्र चल रहा होता है तब उसके दोनों सदनों में प्रतिदिन होने वाली कार्यवाही के संबंध में सांसदों के लिए विस्तृत दैनिक कार्यसूची तैयार की जाती है। सांसदों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों की प्रश्न-सूचियाँ प्रस्तुत की जाती हैं।

भाषा संबंधी संवैधानिक और विधिक प्रावधानों ने सांसदों को दो भाषाओं (हिंदी

और अंग्रेज़ी) में विचार व्यक्त करने के साथ-साथ अध्यक्ष अथवा सभापति की अनुमति से अपनी मातृभाषा में भाषण देने की भी व्यवस्था की है। इसके लिए सदन में तत्काल भाषांतरण की व्यवस्था भी की गई है। यह संसद में बहुभाषिकता की स्थिति बना देती है। वैसे किसी अन्य भारतीय भाषा में दिए गए भाषण आदि का अनुवाद हिंदी एवं अंग्रेज़ी में भी किया जाता है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि संसदीय कार्यवाही भले ही किसी भी भाषा में हो, उसमें अनुवाद का क्षेत्र मुख्य रूप से अंग्रेज़ी से हिंदी एवं हिंदी से अंग्रेज़ी तक सीमित है।

भारतीय संसद देश की बहुभाषिक चरित्र का प्रतिबिंब है, इसमें भाषा-वैविध्य की स्थिति है। संसदीय कार्य-व्यवहार की भाषाओं संबंधी संवैधानिक और विधिक प्रावधानों के कारण संसद के कार्य-संचालन में हिंदी एवं अंग्रेज़ी, दोनों भाषाएँ प्रयुक्त हो रही हैं।

भाषायी प्रावधानों के कारण कोई संसद सदस्य, यदि वह हिंदी अथवा अंग्रेज़ी में विचार व्यक्त नहीं कर सकता तो वह संसद में अपना भाषण मातृभाषा में दे सकता है। इसके लिए शर्त यह है कि लोक सभा की स्थिति में संसद सदस्य को अध्यक्ष महोदय और राज्य सभा की स्थिति में राज्य सभा के सभापति की पूर्वानुमति लेनी होती है और उसे अपने भाषण के साथ उसका अनुवाद भी उपलब्ध कराना होता है। वैसे संसद में तत्काल भाषांतरण की व्यवस्था के कारण हिंदी या अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा में दिए गए भाषण का हिंदी और अंग्रेज़ी में तत्काल भाषांतरण किया जाता है और संसद सदस्य उस भाषण को हिंदी या अंग्रेज़ी में सुन सकते हैं। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि संसद की सभाओं में प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के स्वर सुनने को मिलते रहते हैं क्योंकि इस संवैधानिक प्रावधान के अंतर्गत प्रदत्त सुविधा का लाभ उठाते हुए प्रायः संसद सदस्य क्षेत्रीय भाषाओं की अस्मिता का उद्‌घाटन करने के उद्देश्य से ही अपनी मातृभाषा में भाषण देने का विकल्प चुनते हैं।

संसद में यद्यपि आरंभ में संसद सदस्यों में अंग्रेज़ी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग करने की प्रवृत्ति थी अब इसमें काफी परिवर्तन आया है और अब भाषणों में हिंदी का प्रयोग बड़े पैमाने पर हो रहा है। संवैधानिक और वैधानिक कारणों से संसद का समूचा कार्य हिंदी और अंग्रेज़ी में करने की अनिवार्यता है। अब यह नहीं कहा जा सकता कि संसद सदस्य अब भी अंग्रेज़ी को अधिक महत्त्व देते हैं। इस संदर्भ में हिंदी किसी मायने में पीछे नहीं है बल्कि संसद सदस्यों में हिंदी का प्रयोग बढ़ ही रहा है क्योंकि यह हमारे प्रतिनिधि सामान्यतया जनता से बोट भी तो हिंदी में ही माँगते हैं।

❑

डॉ. किरण सिंह वर्मा

अंग्रेजी-हिंदी क्रियाओं के अनुवाद : कुछ विशेषताएँ

1. किसी भी भाषा में क्रिया का विशेष महत्व होता है। वह वाक्य के केंद्र में होती है क्योंकि वाक्य-रचना तथा वाक्य का ढाँचा मुख्यतः क्रिया के द्वारा निर्धारित होता है। इस धारणा को स्पष्ट करने के लिए हम 'चाहना' और 'इच्छा होना' जैसी क्रियाओं को ले सकते हैं। इन दोनों क्रियाओं के अर्थ में समानता है, इनसे अलग-अलग प्रकार के वाक्य बनते हैं। जैसे,

1) कश्मीर जाना चाहता था/चाहती थी।

2) मेरी कश्मीर जाने की इच्छा थी।

इन दोनों ही वाक्यों का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार होगा :

1,2अ) I wanted to go to Kashmir.

वाक्य 1 में 'मैं' सर्वनाम उद्देश्य के रूप में आया और 'चाहता था/चाहती थी' क्रिया विधेय है जिसकी अन्विति सर्वनाम 'मैं' के लिंग – पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग – के साथ हुई है। वाक्य 2 में स्त्रीलिंग संज्ञा 'इच्छा' उद्देश्य है और उसी के साथ 'थी' (= होना) क्रिया की अन्वति हुई है, जो यहाँ विधेय के रूप में आई है। स्वामित्व-बोधक सर्वनाम 'मेरी' की अन्विति स्त्रीलिंग संज्ञा 'इच्छा' के साथ हुई है। एक अन्य दृष्टि से देखें तो 'थी' (= होना) और 'इच्छा' को मिलाकर 'इच्छा होना' क्रिया बनती है जिसे 'नामिक क्रिया' कहा जाता है। (देखिए आगे 2.1) इन हिंदी वाक्यों के अंग्रेजी अनुवाद में want क्रिया का प्रयोग हुआ है जो 'चाहना' और 'इच्छा होना', दोनों की समानक है।

क्रिया के केंद्रीय महत्व को स्पष्ट करने के लिए अंग्रेजी की एक अन्य क्रिया 'to like' को भी लिया जा सकता है, जिसके हिंदी में तीन अलग-अलग समानक संभव हैं – 'पसंद होना', 'अच्छा लगना'; और 'पसंद करना'। इसीलिए अंग्रेजी के वाक्य I

like *Jalebi* का हिंदी में तीन प्रकार से अनुवाद किया जा सकता है :

3) I like *Jalebi.*

3अ) मुझे जलेबी पसंद है।

3आ) मुझे जलेबी अच्छी लगती है।

3इ) मैं जलेबी पसंद करता/करती हूँ।

स्पष्ट है, तीनों वाक्य-रचनाएँ उनमें आई क्रियाओं के द्वारा निर्धारित हुई हैं।

1.1 वाक्य के केंद्र में होने के नाते क्रिया वाक्य का अनिवार्य अंग होती है। अंग्रेजी और हिंदी भाषाओं में तो क्रिया के बिना वाक्य की रचना ही नहीं होती है। अपवादस्वरूप, कुछ भाषाओं में वर्तमान काल में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्य की रचना संभव है अर्थात् कभी-कभी सहायक क्रिया का लोप भी कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह मान लिया जाता है कि वाक्य में सहायक क्रिया विद्यमान है, किंतु उसका प्रयोग आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए, ऐसी स्थिति संस्कृत, बांग्ला, तेलुगु, तमिल आदि भाषाओं में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्य की रचना संभव है। रूसी भाषा में भी सहायक क्रिया का लोप होता है। परंतु हिंदी या अंग्रेजी में सहायक क्रिया का प्रयोग अनिवार्यतः होता ही है। नीचे दिए गए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :

4. अंग्रेजी : This is my book.

5. हिंदी : यह मेरी पुस्तक है।

6. संस्कृत : इदं मम पुस्तकम् ø

7. रूसी : Eto ø moya kniga. (एता मय्या क्नीगा)

हिंदी और अंग्रेजी की सहायक क्रियाओं को यहाँ पर रेखांकित करके दिखाया गया है। संस्कृत और रूसी में क्रिया का लोप दिखाने के लिए ø चिह्न का प्रयोग किया गया है।

सहायक क्रिया का लोप केवल वर्तमान काल में ही होता है, भूतकाल या भविष्यत्काल में सहायक क्रिया का प्रयोग होता ही है। इसे निम्नलिखित उदाहरणों की सहायता से किया जा सकता है।

8. अंग्रेजी : Today is Tuesday.

8अ) The day after tomorrow will be Thursday.

9. हिंदी : आज मंगलवार है।

9अ) परसों गुरुवार होगा।

10. संस्कृत : अद्य मंगलवारः।

10अ) परश्वः गुरुवारः भविष्यति।

11. रूसी : Sevodnya vtornik. (सिवोद्न्या फ़्तोर्निक)

11अ) Poslezavtra budet chetverg. (पोस्लिज़ाफ़्त्रा बूदित चित्व्येर्ग)

यहाँ पर भविष्यत्काल में प्रयुक्त सहायक क्रियाओं को रेखांकति करके दिखाया गया है।

अनुवाद करते समय सहायक क्रिया के प्रयोग अथवा लोप की इस विशेषता की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए अर्थात् जिस भाषा में उसका लोप होता है, उस भाषा में उसका अनावश्यक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए; और जिस भाषा में उसका प्रयोग आवश्यक है उस भाषा में उसका लोप नहीं किया जाना चाहिए।

2. अंग्रेजी और हिंदी की क्रियाओं पर विचार करते समय हम देखते हैं कि अंग्रेजी की क्रियाएँ सामान्यतः एक घटक से बनी होती हैं जिनमें क्रिया-संकेतक 'to' लगा देने से असमापिका क्रिया बन जाती है। अंग्रेजी के इस क्रिया-संकेतक 'to' की तरह हिंदी में क्रिया-संकेतक के रूप में परप्रत्यय 'ना' का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए – to buy = खरीदना, to open = खोलना, to go = जाना, to read = पढ़ना, to think = सोचना, to write = लिखना आदि। स्पष्ट है कि अंग्रेजी और हिंदी की इन क्रियाओं में लगभग पूरी समानता है।

2.1 अंग्रेजी और हिंदी की सभी क्रियाओं में इस तरह की समानता नहीं मिलती है। हिंदी में बहुत-सी क्रियाएँ दो घटकों से बनती हैं, जैसे : 'पीटना' (1–घटक), 'पिटाई करना' (2–घटक), 'खोलना' (1–घटक), 'बंद करना' (2–घटक)। इसलिए घटकों की दृष्टि से हिंदी की क्रियाओं के दो वर्ग बनाए गए हैं – 'सरल क्रियाएँ', और 'नामिक क्रियाएँ'। एक घटक वाली क्रियाएँ 'सरल क्रियाएँ' कहलाती हैं और दो घटक वाली क्रियाएँ 'नामिक क्रियाएँ' कहलाती हैं। नामिक क्रियाओं की रचना नामिक शब्दभेदों – संज्ञा अथवा विशेषण – के साथ 'करना', 'होना', 'आना', 'उतारना', 'पड़ना' क्रियाओं को जोड़कर की जाती है। नामिक क्रिया के अंग के रूप में प्रयुक्त होने वाली इन क्रियाओं को 'क्रियाकर' कहते हैं क्योंकि ये क्रियाएँ संज्ञा अथवा विशेषण के साथ जुड़कर अपना मूल अर्थ छोड़कर क्रिया बनाने का विशेष प्रकार्य करती हैं। नामिक क्रियाओं के कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं : to close : बंद करना, to be born : पैदा होना, to decide : फैसला करना, to download : डाउनलोड करना, to imitate : नकल उतारना, to recall : याद आना, to publish : प्रकाशित करना, to remember : याद करना। ध्यान देने की बात यह है कि अंग्रेजी की ये सभी क्रियाएँ 1–घटक वाली हैं।

अंग्रेजी में भी 2–घटक वाली क्रियाएँ होती तो हैं परंतु अपेक्षाकृत सीमित मात्रा

में। अंग्रेजी की इस तरह की क्रियाओं के कुछ उदाहरण हैं : to put question = सवाल पूछना, to commit mistake = गलती करना, to be angry = नाराज होना, to be exert influence = प्रभावित करना आदि।

3. घटकों के अनुसार अंग्रेजी और हिंदी की क्रियाओं के प्रयोग में समानताओं के साथ-साथ असमानताएँ भी हैं। यहाँ पर केवल 'असमापिका क्रियाओं' के प्रयोगों के उदाहरण दिए जा रहे हैं। अनुवाद की दृष्टि से यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसा नहीं होता है कि जहाँ अंग्रेजी में 'असमापिका' का प्रयोग हुआ है, वहाँ हिंदी में भी वैसा ही प्रयोग किया जाए। देखा जाए तो दोनों भाषाओं में असमापिका क्रियाओं का प्रयोग अलग-अलग प्रकार से होता है। इसलिए अनुवाद करते समय इस अंतर की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

3.1 पहले असमापिका क्रियाओं के प्रयोग की समानता पर विचार करते हैं। असमापिका क्रियाओं के प्रयोग की समानता नीचे दिए अंग्रेजी और हिंदी के वाक्यों में देखी जा सकती है :

12) I want to go.

12अ) मैं जाना चाहता/चाहती हूँ।

13) We want to buy new furniture.

13अ) हम नया फर्नीचर खरीदना चाहते हैं।

14) We will have to meet again tomorrow.

14अ) हमें कल फिर मिलना पड़ेगा।

यहाँ पर अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही भाषाओं में असमापिका क्रियाओं का प्रयोग वृत्तिबोधक क्रियाओं – अंग्रेजी की 'want', 'have' और हिंदी की 'चाहना', 'पड़ना' – के साथ हुआ है। अर्थात् वृत्तिबोधक क्रियाओं के साथ दोनों ही भाषाओं में असमापिका क्रिया का प्रयोग होता है।

3.2 अंग्रेजी में क्रिया संकेतक 'to' का प्रयोग निकट भविष्य या आसन्न भविष्य में होने वाली क्रिया के साथ भी किया जाता है। हिंदी में भी ऐसी स्थिति में असमापिका का ही प्रयोग किया जाता है, परंतु क्रिया-संकेतक परप्रत्यय 'ना' का रूप बदलकर 'ने' हो जाता हे। यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है :

15) Mira is going to the market to buy fruits.

15अ) मीरा बाजार फल खरीदने जा रही है।

16) The court is goinng to pronounce its judgement tomorrow.

16अ) अदालत अपना फैसला कल सुनाने वाली है।

इस प्रकार यहाँ पर असमापिका के प्रयोग में अंग्रेजी और हिंदी में एक छोटा-सा अंतर दिखाई देता है – हिंदी में असमापिका क्रिया का रूप बदल गया है : खरीदना → खरीदने, सुनाना → सुनाने।

3.3 अंग्रेजी की क्रिया 'to' का प्रयोग किसी उद्देश्य या लक्ष्य को अभिव्यक्त करने के लिए भी होता है और उसका हिंदी में अनुवाद संयुक्त परसर्ग 'के लिए' के द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए :

17) We are going to the polling station to cast our vote.

17अ) हम अपना मत डालने के लिए मतदान-केंद्र जा रहे हैं।

18) In recent times, the European Space Agency launched European spacecraft *Smart 1* in September 2003 to survey the lunar environment and [to] create an X-ray map of the Moon. (*Dream 2047,* November 2008, Vol. 11, No. 2, p. 35)

18अ) नवीनतम अभियानों में यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी ने चाँद के परिमंडल के सर्वेक्षण तथा उसके एक्स-रे मानचित्रण के लिए *स्मार्ट-1* नामक अंतरिक्ष यान को सितंबर 2003 में प्रक्षेपित किया। (*ड्रीम 2047,* नवंबर 2008, खंड 11, अंक 2, पृष्ठ 2)

3.4 अंग्रेजी की असमापिका क्रिया का हिंदी से एक और अंतर आगे निम्नलिखित उदाहरणों में भी देखा जा सकता है :

19) I am not able to see anything in this darkness.

19अ) इस अँधेरे में मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है।

20) I am not able to hear anything in this noise.

20अ) इस शोर-गुल में मुझे कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा है।

यहाँ पर अशक्तता का अर्थ अभिव्यक्त हुआ है (not able to see, not able to hear) जिसके लिए हिंदी में भाववाचक संज्ञा का चयन (दिखाई नहीं देना, सुनाई नहीं देना) किया गया है।

4. अंत में यही कहा जा सकता है कि हिंदी की एक विशेषता है – उसकी 2–घटक वाली क्रियाएँ, जिनकी अंग्रेजी में समानक क्रियाएँ 1–घटक वाली होती हैं। अनुवादक का इन समानताओं और असमानताओं की ओर ध्यान देना जरूरी होता है।

❑

प्रो. विजयकुमारन सी.पी.वी.

रामचरितमानस का भूमंडलीय परिवेश

भारत से बाहर दुनिया के कोने-कोने में जहाँ भी भारतीय बसे हुए हैं, उनमें से अधिकांश अपने धर्म-ग्रंथ के रूप में रामचरितमानस की पोथी, हनुमान चालीसा और भगवत् पुराण का आश्रय लेते हैं। अमेरिका के फ्लोरिडा विश्वविद्यालय, मियामी में नवंबर 1999 ई. को जब तुलसी पंचशती समारोह आयोजित हुआ, तो अनेक विदेशी विद्वानों के साथ भारतीय विद्वानों ने भी इस बात की पुष्टि की कि रामचरितमानस के बिना हिंदुओं का जीना मुश्किल होता है। हरिशंकर आदेश ने बंधुआ मजदूरों की ऐसी मनोदशा बताई है – दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात कुटियों में रामचरितमानस की चौपाइयाँ गा-गाकर उन्हें अन्याय और कठिनाइयों को सहने की शक्ति मिलती थी। (हरिशंकर आदेश, तुलसीदास और उनके कृतित्व पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन – आलेख सारांश, नवंबर 26-28, 1999, 1)

दक्षिणी अमेरिका, लातिन अमेरिका जैसे करीबियाई द्वीप समूह के हिंदुओं के लिए मानस एक धर्मग्रंथ ही नहीं शास्त्र भी था। दक्षिण एशिया के कई देशों में जैसे वियतनाम, मलय, थाईलैंड, इंडोनेशिया और फिलीपीनी रामायणों की कथा भी अपना-अपना सांस्कृतिक रूपांतरण है, जिसमें मुसलमानी पात्रों और घटनाओं में तब्दीली कराकर रचे फिलिपीन रामायण भी प्रसिद्ध है। केरल में भी 'मप्पिलरामायण' (मुसलमानी रामायण) प्रसिद्ध है, जो लोकनृत्य शैली में प्रस्तुत किया जाता है।

डॉ. मोहन के. गौतम ने तुलसी विचार गोष्ठी में यह याद दिलाया है कि सूरीनाम और नैथरलैंड के प्रवासी भारतीयों के जीवन मूल्य और परंपरा के अनुपालन में रामचरितमानस की अहम् भूमिका है (मोहन के. गौतम, 1999, 18) प्रो. लक्ष्मीनारायण दुबे ने उर्दू कवि फिराक गोरखपुरी को उद्धृत करते हुए कहा है कि मुसलमानी कवियों को भी तुलसीदास से प्रेरणा मिलती रही है – Famous Urdu poet Firaq Gorakhpuri used to say that

Tulsi is the greatest poet of the world. Hundreds of Muslim poets have written poems on Tulsi and have derived inspiration from his works. (ibid. 14)

रामचरितमानस का प्रतीकांतरण तो सैकड़ों साल पहले ही होने लगा था। वर्तमान काल में नाटकीय रूप में उसकी प्रस्तुतियाँ, रामानंद सागर के रामायण धारावाहिक के समान कई सिनेमाएँ प्रसिद्ध हैं तो लोक नाटक एवं नौटंकियाँ आदि मध्य युग से अब तक मानस के मौलिक कारयित्री अनुवादों की भूमिका निभाने वाली हैं। रामायण पर छायानाटक, गुड़ियानाच, चित्रांकन, भित्ति-चित्र, शिलालेख, शिल्प-काव्य एवं चित्र-काव्य तक भारत के समान दुनिया के कई देशों में पाया जाता है। वैसे तो भारत में रामायण के सांस्कृतिक अनुवाद की परंपरा अभिनवगुप्त के नाट्यशास्त्र के भाष्य (ई.पू. दूसरी सदी), हरिवंश पुराण (पहली शताब्दी) आदि में भी प्राप्त होती है। मध्यकाल से अब तक रामलीला के रूप में यह वाराणसी, रामनगर, अस्सी, और उत्तर प्रदेश के अन्य पहाड़ी प्रदेशों में कायम है। राजस्थान, हरियाणा में भी रामलीला के लिए कई मंडलियाँ हैं। अयोध्या, मथुरा और दरभंगा की रामलीला मंडलियाँ दुनिया-भर में मशहूर हैं।

उर्दू और फारसी में रामचरितमानस के अनुवाद की बात मुगल शासनकाल से बनी। अकबर के शासनत्व में अबुल फजल के नेतृत्व में एक अनुवाद मंडली ही बनी थी। एक कट्टरपंथी मुस्लिम इतिहासकार मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी ने फारसी में रामायण का भाष्य रचा, अपनी भूमिका के साथ। जहाँगीर के दरबारी कवि मुल्ला सादुल्ला ने मानस का अनुवाद करके सम्राट को भेंट की। दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में उसकी पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। शेख सलीम अहमद के अनुसार रामायण के सौ से ज्यादा उर्दू अनुवाद एवं आलोचनात्मक अध्ययन हुए हैं। उर्दू को राजभाषा की पदवी दिला देने के उपरांत प्रकाशकों की भी दिलचस्पी उर्दू रामायण पर लगी है। दक्षिण अफ्रीका और मॉरिशियाई द्वीपों में भी मानस के अपने संस्करण हैं। दुनिया में कही भी हनुमान मंदिर का निर्माण हुआ है तो उसका कारण हनुमान की रामभक्ति है, जिसकी कायापलट स्वयं में वे भक्त देखना चाहते हैं, सो भक्तों के द्वारा राम की पूजा-उपासना का यह दूसरा रूप है।

मेवाड़ के राजा राणा जगत सिंह के एक सौ बीस रंग-चित्र, जो उन्होंने सन् 1649 और 1653 के बीच बनाए थे, प्रदर्शिनी की एक और आकर्षणीयता रही। मेवाड़ के राजे राम को अपना पूर्वज मानते थे और रामायण को वे एक तरह से पारिवारिक इतिहास भी मानते थे। श्रीमती अनिता इसल्सका के द्वारा अपने वेबसाइट www.untoldlondon.org.uk/news/ART57739.html में रामायण की जो बारीकियाँ इन शब्दों में प्रस्तुत की गई हैं, वे सांस्कृतिक अनुवाद की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करती हैं – For millennnia since its authorship the tale has been told and re-told through poetry, dance-

dramas, shadow puppetry, illustrations and more recently, film. While British Library's exhibition focuses on the seventeenth-century manuscripts, it also gives a sense of the diversity of the story's telling through film posters, illustrated ganjifa cards and sculptures.

मलयालम में मानस रूपांतरकार कवि वेण्णिक्कुलम

मलयालम में मानस के अनुवाद काफी हुए है, मगर कवि वेण्णिक्कुलम का अनुवाद इस दृष्टि से मार्के का है कि उनका कवि हृदय तुलसीदास को सबसे ज्यादा आत्मसात कर सका। वेण्णिक्कुलम ने अपनी आत्मकथा 'आत्मरेखा' (1974) (कोट्टयम्, एस.पी. सी.एस.) में रामचरितमानस के अनुवादकत्व पर लंबी टिप्पणी दो अध्यायों में रची है। आठवें अध्याय में उन्होंने मानस के अनुवाद के प्रेरककर्ता के रूप में मलयालम मनोरमा के संस्थापक मामनमाप्पिला का नाम लिया है जिनके कहने मात्र से यह अनुवाद कार्य शुरू हुआ और प्रारंभिक कुछेक अंश 'मनोरमा' (मलयालम साप्ताहिक) में धारावाहिक रूप में प्रकाशित भी हुए। उस समय वेण्णिक्कुलम मनोरमा के संपादन में भी लगे हुए थे। उन्होंने अपने अनुभव की गठरी खोलकर कहा – स्वतंत्रता सेनानी हिंदी प्रचार के साथ-साथ तुलसीदास रामायण का पाठ भी आवश्यक समझते थे।

वेण्णिक्कुलम ने इस अनूदित मानस खंड का – जनकवाटिका प्रसंग – वाचन किया तो सहृदयों ने साधुवाद दिया। लेकिन प्रकाशकों के अभाव में कृति के समग्र अनुवाद निकाल न सका। उन्होंने लिखा है कि महाकवि वल्लत्तोल और उल्लूर जब भी मिलते थे तो उन्हें मानस के मलयालम अनुवाद पूरा करने के लिए उकसाते रहे। (पृष्ठ 136) वेणिक्कुलम ने लिखा है कि ''सन् 1965 में फिर से लिखना शुरू किया। तीन साल लगातार पूरा करने में लगाए। अपने जीवन की सबसे बड़ी साहित्य-साधना के रूप में इसे लिया जाता है। नवंबर सन् 1968 को साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ एवं केरल साहित्य परिषद के संयुक्त तत्वावधान में कृति का विमोचन हुआ, और सहृदयों ने बड़ी दिलचस्पी से मेरे रामायण का स्वागत किया।'' (पृष्ठ 137)

वेण्णिक्कुलम को इस मानस अनुवाद के नाम पर जी. शंकरकुरुप द्वारा संचालित पहला ओटक्कुषल पुरस्कार, केरल सरकार का उत्तम साहित्य ग्रंथ पुरस्कार, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की केरल शाखा की तरफ से सम्मान तथा केरल हिंदी प्रचार सभा की तरफ से 'साहित्य-कला-निधि' की उपाधि आदि प्रदान किए गए। भारत सरकार ने 500 प्रतियाँ खरीद लीं। केरल साहित्य अकादमी ने हजार रुपए की धनराशि प्रदान की। आखिर अनुवादक कवि वेण्णिक्कुलम ने यह भी जोड़ा है कि आध्यात्मिक अनुभूति के अलावा भौतिक श्रीवृद्धि भी इस अनुवाद के नाम पर हुई है। (139)

तुलसीदास और रामचरितमानस के विदेशी अध्ययन की प्रासंगिकता साबित करते

हुए अनुसंधाता डॉ. रामदास लांब ने आपत्ति उठाई है कि पाश्चात्य विश्वविद्यालयों में हिंदू धर्म का विशद अध्ययन किया जाता है जहाँ संस्कृत ग्रंथों की अहम भूमिका बनी रहती है, मगर तुलसीदास और रामभक्ति परंपरा के अध्ययन पर कम महत्व दिया जाता है। उन्हीं के शब्दों में – In the process, Tulsidas and the contemporary Ram bhakti tradition is given very little attention. (Dr. Ramdas Lamb, The invinsible Tulsidas in the contemporary western study of Hinduism, paper presented in the *International seminar on Tulsidas and his works,* Miami, November 26-28, 1999, 29) इस लेखक ने 'रामचरित के पुनःसृजन में तुलसीदास की सृजनात्मकता' पर उपर्युक्त अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में आलेख-वाचन करते हुए तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा पर प्रकाश डाला है और उक्त आलेख को एक अध्याय के रूप में इस पुस्तक में पढ़ा जा सकता है।

एशियाई राज्यों में 'रामचरिमानस'

एशियाई राज्यों में म्यांमार, लाओस, कंबोडिया, थाईलैंड, मलेशिया, ब्रूनेई और इंडोनेशिया आदि देशों में उपनिवेशीकरण के निमित्त हिंदू संस्कृति का पल्लवन हुआ था। म्यांमार के अकादमीय माहौल में रामायण का प्रमुख स्थान है। राजा अनव्रता (ईस्वी सन् 1044-1077) के जमाने से राम कथा की मौखिक परंपरा जारी रही। 'मोन' भाषा के एक शिलालेख में राजा कियानसिथा (सन् 1084-1113) ने यह घोषणा की थी कि पूर्व जन्म में वे अयोध्या के राम के निकट संबंधी थे। 'बागन युग' से म्यांमारी संस्कृति में राम परंपरा पनपती रही। उत्तर बागन युग में दृश्य-श्रव्य माध्यम और साहित्य का एक प्रमुख कथ्य रामायण रहा। आनुष्ठानिक कला के रूप में भी वहाँ रामायण का बड़ा प्रचार हुआ, जब उसका संपर्क पड़ोसी देश लाओस, थाईलैंड और मलेशिया आदि से हुआ।

म्यांमार के संस्कृति और साहित्यवेत्ता उ थेन हान के अनुसार वहाँ की राम कथा के विकास में नौ पगडंडियाँ हैं। गद्य काव्य के रूप में तीन ग्रंथ – जैसे 'राम वत्थू' (17वीं सदी), 'महाराम' (18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी के आरंभ), 'राम थोन्मियो' (1904) आदि रचे गए। पद्य काव्य रूप में तीन – उ ओंग फियो के 'राम थाग्यन' (1775), उ थोई के 'राम गयन' (1784), सया हुतिन का 'अलाउँग राम थाग्यन' (1905) आदि रचे गए। तीन राम नाटक – नेमियो नाटक क्यागोग का 'तिरीरामा' (18वीं सदी का अंत या 19वीं सदी का आरंभ), सयाकु का 'पोन्तउ रामा' (1880) और उ मउंग गेयिल का 'पोन्तउ रामा-लखना' (1910) आदि प्रसिद्ध हैं। उ थेन हान ने इंडोनेशिया में सितंबर 1971 में आयोजित रामायण मेला में जो आलेख पढ़ा उसमें बताया कि राजा बोदाउ पया (सन् 1782-1819) के शासनकाल से राजदरबार में राम नाटक मंचित हुआ करता था। जो भी हो रामायण को एक अनुष्ठान के रूप में म्यांमार के व्यापारी

और प्रवासी असम, मणिपुर, लोथिया, चेंगमी और योदिया समुदाय वाले मियांमार में बसते हुए साथ ले आए। म्यांमार के इतिहास में यह भी अंकित है कि रामायण काव्य नाटक को पूरी निष्ठा के साथ लगातार 40-45 रातों में प्रस्तुत किया जाता था।

यूरोप में रामायण

यूरोप में रामायण के अनेक भाष्य अंग्रेजी, स्पेनी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं में उपलब्ध हैं। रामचरितमानस के एटकिंस, ग्राउस आदि के अनुवाद तथा अन्य अनुवादों का जिक्र विस्तार से अन्यत्र किया गया है। स्पेन में रामायण का नया रंगभाष्य रचा गया और राज्य के भीतर और बाहर इसके चार-पाँच बार मंचन भी हुआ। इंग्लैंड में रामायण का प्रस्तुतीकरण कई रूपों में हो रहा है। कभी-कभी यह दृश्यांकन दक्षिण एशियाई देशों और भारत की पीड़ित महिलाओं की आर्थिक सहायता के लिए चंदा इकट्ठा करने के लिए हुआ करता है। 1994 में निर्माता शोभा रामन ने इस प्रकार का एक रंगमंच सजाया। ब्रिटिश लाइब्रेरी में रामायण पर प्रदर्शिनी भी लगती है। भित्ति-चित्र, छाया-चित्र और रंग-चित्र इनमें प्रमुख हैं। 'तारा आर्ट्स थियेटर ग्रुप' ने ऐसी ही एक प्रदर्शिनी में रामायण पात्रों की शिला-मूर्तियाँ भी लगाई थीं, जिन्हें रामलीला की वेशभूषाओं से सजाया गया और कृत्रिमता से बचा लिया था।

लंदन में अनगुस स्ट्राचन करोड़ों डॉलर खर्च करके एक फिल्म 'Between two Worlds' राम और सीता के आधार पर शेक्सपीयराई शैली में बना रहे हैं। रामायण 'ब्लॉक क्याट थियेटर' की प्रस्तुति के रूप में यह इंग्लैंड के कला मंडल के द्वारा ही संपन्न होने जा रहा है।

स्पेन में रामायण का नया भाष्य

'कला थियेट्रो डॉसा इंदिया–एस्पानिया' के द्वारा स्पेन की राजधानी माद्रिद से 200 कि.मी. की दूरी पर वल्लदोलिद शहर में, एक नुक्कड़ नाटक शैली में रामायण का स्पेनी भाष्य रचा। पहले पहल 29 मई, 2008 को भारत-स्पेन के संयुक्त तत्वावधान में यह कला विभूति कासा इंदिया (भारत भवन) के बगल वाली 'इंडिया मार्ग' (काये इंदिया) में सजाई गई। इसमें भारतीय-स्पेनी रंगकर्मियों के साथ-साथ बुल्गारिया, कोलंबिया आदि देशों के कलाकारों का भी सहयोग रहा। रंगपाठ की रचयिता भारतीय कला-विशारदा वल्लदोलिद निवासी मोनिकाद ल फुयंते है, जो यहाँ रामायण का स्त्रीपाठ निर्मात्री है तथा नए-नए प्रयोगों के द्वारा हर बार प्रस्तुति में परिवर्तन करती है। जाहिर है, स्पेन और यूरोप में इस नाटक की प्रस्तुतियाँ हुई हैं, और केवल स्पेन के रामायण दर्शकों की संख्या 5000 रही और कई जगह पर इसकी पाँच सफल प्रस्तुतियाँ हुईं।

चूँकि लेखक का स्पेन में इस कार्य से भी थोड़ा-बहुत संबंध था, इसलिए इस नए प्रयोग पर थोड़ा प्रकाश डाला जा सकता है। नाटक की शुरुआत में इसे बनारस में होने वाली रामलीला बताया गया है (होय एंपेसो रामलीला), और बनारसी गलियों का परिचय कराते एक तरफ बॉलीवुड मसाला का नाच-गाना चलता है, रिक्शे वाले बाबू और चाय वाले का प्रवेश, नटराज शिव की मूर्ति के सामने पूजा-पाठ करते ब्राह्मण पंडित से काशी विश्वनाथ मंदिर का आभास आदि सहज शैली में प्रस्तुत किए जाते हैं। अलबत्ता दर्शकों के बीचों-बीच नाटक का आरंभ होता है। भारतीय गलियों की पहचान के निमित्त ध्वनि संकेत भी सजाया गया है। मंदिर दर्शनार्थ निकले श्रद्धालुओं के साथ, नाटक के कलाकारों का मंदिर दर्शनोपरांत मंचासन होता है। नाटक के निर्देशक हैरो नेग्रो वेरगारा 'रामायण' की पुस्तिका को लेकर प्रवेश करता है, और वह तत्कालीन मंच के सामने बैठाए दीप की वंदना 'कलरी' (दक्षिण भारत की सामरिक कला) शैली में करते हुए कथासार स्पेनी भाषा में बताता हुआ दर्शकों के बीचों-बीच चले आता है। बाबू अपने रिक्शे में सोता-जगता काम-धंधा शुरू करता है। वह रामलीला के आरंभ की घोषणा करते हुए गली-गली फिरता है। जैसे ही स्पेन से आध्यात्मिकता की खोज में भारत आई लड़की लीला उसके रिक्शे के पास आती है, वह उसे रामलीला देखने को उकसाता है। किराए की दांव-पेंच में 'एक सवारी, सौ रुपए' पर करार होता है। यूँ ही रिक्शे में बैठी लीला भारतीय रहस्यवाद और आध्यात्मिकता में अपना ज्ञान बटोरने लगती है, बाबू उसे कहीं टालने का प्रयास करता है कि एक विदेशी को कहाँ राम का मर्म समझ में आएगा।

जैसे लीला अपनी अंतरंग खोज में डूबती है, बाबू दशरथ के वेश धरते हुए पुत्र कामेष्टि का परिचय कराता है। रामायण के राम के सीता-विवाह तक की कथा उस पाठ में संपन्न होती है। लीला का कायापलट सीता में और बाबू का राम में होता है। तदनंतर रामायण की एक-एक मर्मप्रधान घटना का मंचन होता है। काफी सात्विक और आहार्य अभिनयों से कथा-क्रम चलता है तो कायिक और वाचिक अभिनय का भी सहारा लिया जाता है। भरतनाट्यम की विशेषज्ञा मोनिका ने काफी कुछ संकेतों में रामायण में निहित प्रकृति, परिवेश और घटनाओं का निर्माण कराया है।

नाटकांत में सीता के मानसिक संघर्ष का दृश्य भी अत्यंत हृदयकारी है। वह सारे देवताओं का स्मरण करती अपनी चिता जलाती है, मगर अग्नि उसे शुद्ध कर लेती है। समय के चलते ही धीरे-धीरे एक स्त्री पात्र का प्रवेश होता है, जिसके हाथों उसे अग्नि से शुद्ध करते पानी से सीता के शरीर को निर्मल कराना होता है और लीला पुकारते हुए उसे साधारण कपड़ा देती है। अब सीता का लीला में कायापलट होता है। लीला

कपड़ा पहनते हुई खड़ी होती है और नाटक की समाप्ति मौलिकता को प्राप्त कर लेती है।

लीला के हाथों में एक अटैची है, जिसमें रामायण की बहुभाषी पुस्तिकाएँ हैं। आध्यात्मिकता को तलाशती लीला अब यह खोज लेती है कि क्या रामायण की समाप्ति ऐसी होनी चाहिए, जिसे वाल्मीकि से लेकर आज तक पढ़ते-मनन करते आए हैं? अपने प्रश्नों को वह अन्य भारतीय सहकलाकारों के सामने रखती है, लेकिन वे सब परंपरा का अनुसरण करते हुए दिव्य रामायण पर ही टिके रहते हैं। अपनी जिज्ञासा की पूर्ति और खोज का अंत प्रमाणित करने के लिए वह स्थानीय भारतीय हिंदी आचार्य प्रो. विजयकुमारन का भी नाम लेती है।

लीला अपने दो पुत्रों के साथ दोबारा बनारस आती है, और प्रतीकात्मक रूप में उन्हें राम के पुत्र लव और कुश के नाम रखती है। अब उसे वही पुराना रिक्शा वाला बाबू मिल जाता है, जहाँ पर नौटंकी की समाप्ति और चरम सीमा होती है कि कहीं बाबू के द्वारा ही उन बच्चों की पैदाइश हुई थी, और उन्हें छोड़कर इधर भारत में वह मस्ती से जी रहा है। कहीं उपेक्षिता लीला दूसरी सीता बनती है।

कथा के विचलन के कुछेक प्रसंग हैं, जिसे विदेशी होते हुए नित्य नए पाठों को तलाशती एक जिज्ञासु अनुसंधात्री की दृष्टि से देखा जा सकता है। रामायण का एक स्त्री पाठ भी यहाँ निर्माता है कि निर्देशिका एवं नायिका का एक प्रश्न निरंतर दर्शकों को उलझाता है कि सीता को क्यों छोड़ दिया? ''परा, परा, परा...? (के वास्ते, के वास्ते, के वास्ते...?) स्पेनी भाषा का यह प्रश्न-वाक्य सहृदयों में नई सोच पैदा करता है। यहाँ सीता परंपरा को तोड़ती हुई आधुनिक औरत की हैसियत निभाती है। मुख्य पात्र बाबू राम तथा दशरथ स्वयं सण्णी सिंह है। लीला, सीता, मंथरा, शूपर्णखा आदि का वेश मोनिका ने लिया। रावण एवं हनुमान के वेश में बुल्गारिया का अभिनेता एमर्सन लूयीस है। गायत्री केशवन को सरस्वती कहा गया कि कहीं भूल से वहाँ कैकेयी को सरस्वती कहा गया है? पंचवटी के लक्ष्मण का काम राम से करवाते भी शोभा नहीं देती। राम सीता को पाते ही दर्शकों में यूँ कहता है – ''He traido Sita'' (सीता को मैं लाया हूँ) जो एक सूच्य वाक्य है, लेकिन उनकी वापसी अयोध्या तक नहीं होती। राम का, वन में ही सीता का परित्याग करना मूल कथा से विचलन है। छपे कथासार में – ''alli vivieron felicamente en el bosque hasta que un dia el rey de la cuided de Lanka, el malvado Ravana de diez cabezas se enamaro de ella y la rapto.'' जिसका सारांश सह है कि रावण का सीता से प्यार होने से उसे चुराया गया, जैसा कहना बड़ा आपत्तिजनक है कि कहीं दर्शक इसे एक नायक की औरत को लेकर, प्रतिनायक

का झगड़ा मात्र न माने। बॉलीवुड मसाला के लिए नाच की भी एक पूरी टीम यहाँ कलाकार सण्णी सिंह (मुंबई) के नेतृत्व में तैयार की गई है और विशाल कृष्ण (दिल्ली) को पुजारी की भूमिका निभाने को मिली। चाय वालों के जैसे कुछ सहयोगी भारतीय कलाकार भी इसमें हैं। लक्ष्मण का काम राम से करवाते शोभा नहीं देता। नाटक के खुले रंगमंच पर गली में आरंभ होने के समान ही गली में ही अंत होता है।

पहले दिन की तुलना में दूसरे दिन दर्शकों की भीड़ ज्यादा हुई और कुछेक परिवर्तन भी दृश्यांकन में दूसरे दिन कर दिया गया। नाटक की भाषा में स्पेनी के साथ-साथ भारतीय भाषाएँ खासकर हिंदी, मलयालम, तमिल और संस्कृत का प्रयोग हुआ है, जो कृत्रिमता को नकारता है। इसे संकेतों के जरिए समझने में दर्शकों को दिक्कत नहीं हुई। संवाद और गीत-योजना भी सम्यक् है। नाटकारंभ में ''मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमा शाश्वतीसमा...'' का वाल्मीकिय श्लोक, श्रीराम वंदना में ''कौसल्यासुप्रजा रामपूर्वा संध्याप्रवर्तिते...'', सीता स्वयंवर में प्रसिद्ध गीत ''सीता कल्याण वैभोगमे, राम कल्याणवैभोगमे...'', तथा रावण का 'शिवभजन' आदि का भारतीय राग-रागिणियों में प्रस्तुतीकरण सह-कलाकारों ने सही संदर्भित किया है। इन गीतों के स्पेनी अनुवाद या अनुभाषण की दर्शकों को जरूरत महसूस नहीं हुई, उन्हें संदर्भगत सब कुछ समझ में आ जाता था। हनुमान का 'रामभजन' अपेक्षित था, मगर उसके स्थान पर हनुमान का प्रवेशगान ही हुआ है। संगीत योजना भारतीय-फ्रांसीसी कलाकार रवि और सहायक नंद कुमार, रंग सज्जा सण्णी सिंह तथा कुछेक स्पेनी कलाकारों के द्वारा संपन्न हुई है। अस्तु, यूरोप में पहली बार रामायण का यह नुक्कड़ दृश्यांकन एक इतिहास है, जिसमें कासा इंदिया की अहम भूमिका है और भारत अपनी बहुआयामी संस्कृति को फैलते देखकर गर्व का अनुभव कर सकता है।

वस्तुतः रामायण के सांस्कृतिक अनुवाद विषयक बातें लिखने से नहीं बनतीं। क्योंकि उत्तर आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति के रूप में संस्कृति का विखंडन होने लगा है कि उसे सहज मानना भी संभव नहीं हो पाता। होमी बाबा जैसे सांस्कृतिक विचारवेत्ता ने मिषेल को दिए साक्षात्कार में विस्तार से इसकी विवेचना की है (Artforum v. 33, n. 7, March, 1995:80-84) सच ही कहा गया है कि अगर रामायण और महाभारत नहीं रचे गए होते तो भारतीय साहित्य शून्य रह जाता। लेकिन दुनिया के किस्म-किस्म के साहित्य में इन महान आख्यानों की अनुगूँज देखने को मिलेगी। होमर को पाश्चात्य वाल्मीकि कहा गया, जबकि वह भारतीयता का भूमंडलीय परिवेश रचने के बराबर है। स्पेन के रंगकर्मियों ने रामायण के मंचन के निमित्त लेखक से कई प्रश्न किए थे कि रामायण के इतने पाठ उपलब्ध होने पर भी सीता के भाग्य को क्यों नहीं बदला गया। काश! वे सीतायन की ओर झुकने वाले लगते हैं। वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक ही क्यों

आज की पीढ़ी तक रामायण से बहुत कुछ लेते आई है, और यह रामायण यात्रा जारी ही रहेगी। स्पेनी नौटंकी के लिए लेखक ने यह शीर्षक ''Ramayan, un viaje cien rupias'' को ''रामायण, एक सवारी सौ रुपए'' जैसे पदबंधों में रूपांतरित किया, जोकि जिज्ञासु रंगकर्त्री मोनिका के अनुसंधान की यात्रा की याद कराता है। रामायण संस्कृति में उत्तर-आधुनिक बॉलीवुड संस्कृति भी ढूँढ़ने वाले अब हैं। कहीं पढ़ा है कि महाभारत से बढ़कर दृश्य-श्राव्य माध्यम की अनुयोज्यता रामायण काव्य के दृश्यांकन में ही है। तुलसीदास ने सच ही कहा है, ''जाकि रहि भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन वैसी।''

❑

संदर्भ

1. वेण्णिक्कुलम, 1974, 'आत्मरेखा' (जीवनी) कोट्टयम, साहित्य प्रवर्तक सहकारी समाज (मलयालम)
2. M.K. Gandhi, 1993, M.K. Gandhi : *An Autobiograpy (or) The Story of My Experiments With Truth,* Ahmedabad, Navjivan Publishing House, First edition 1927, reprint.
3. Jawaharlal Nehru, 1991, *The Discovery of India,* New Delhi, Indian Council for Cultural Relations, First edition 1976, Third edition.
4. Elena del Rio, Trad. 1998, *El Ramayana, Autentica De La Literature Hindú,* Tulsidas, Edicomunicatión, Barcelona.

Abstract :

1. *International conference on Tulsidas and his works,* Miami, Florida, USA. November 26-28, 1999
2. *Art forum International Magazine* Inc. 1995

वेबसाइट

1. www.untoldlondon.org.uk/news/ART57739.html
2. www.hindustantimes.com/StoryPage/StoryPage.aspx?sectionName=&id=e625c.
3. www.nagamas.co.uk/content/view/29/23/
4. www.blackcat-theatre.co.uk/Ramayana.html
5. www.goldenpages.com/hotspots/rama/rama.htm

प्रो. सुशील कुमार शर्मा

पूर्वोत्तर भारत की भाषाएँ और अनुवाद

देश को स्वतंत्र हुए आधी शताब्दी से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है; परंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि तमाम आधुनिक साधनों की प्रचुरता के बावजूद भी पूर्वोत्तर भारत देश के शेष भाग से संस्पर्श की भाँति अलग-थलग पड़ा है। पूर्वोत्तर से संलग्न – बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश जैसे प्रांतों से इसका पड़ोसियों की भाँति परिचय भी है; परंतु सबसे सुदूरवर्ती मध्य प्रदेश, गुजरात जैसे प्रांतों के ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी पूर्वोत्तर के प्रांतों के नाम भी नहीं जानते। इतना वे अवश्य जानते हैं कि कामरूप-कामाख्या बंगाल की भाँति विदेश में है। बंगाल की तरह वहाँ भी काला जादू होता है और जो यहाँ आता है, उसे यहाँ की स्त्रियाँ जादू से बकरा या भेड़ बनाकर बांध लेती हैं, फिर उसे मारकर खा जाती हैं। पूर्व-प्रचलित यह धारणा आज भी यथावत् है। यह तब है, जब पुरानी पीढ़ी लगभग चूकती जा रही है, और नई पीढ़ी अपने पूर्वजों के विश्वास को जीती हुई इंटरनेट के युग में प्रवेश कर गई है।

ऐसे पूर्वोत्तर भारत में भाषाई विविधता को समझना अत्यंत दुष्कर है। असम, मेघालय, अरुणाचल, सिक्किम, नागालैंड, त्रिपुरा, मणिपुर और मिजोरम – इन प्रांतों में अनेक प्रकार का वैविध्य है। इनकी भौगोलिक संरचना, इनके सांस्कृतिक तत्वों को पृथक् करती है और स्पष्ट है कि जब सांस्कृतिक विविधता है, तो भाषाई विविधता भी होगी। इन सातों राज्यों की अपनी पृथक् भाषाएँ हैं। असम में असमिया, अरुणाचल में चकमा, त्रिपुरा में त्रिपुरी, मणिपुर में मणिपुरी आदि भाषाओं की प्रधानता है। वस्तुतः समूचे पूर्वोत्तर में बोली जाने वाली भाषाओं और बोलियों की संख्या लगभग 100 हैं। इन भाषाओं में से 65 बोलियाँ प्रमुख हैं, जो तिब्बती-चीनी परिवार की हैं। डॉ. अरुण कुमार सिंह[1] ने इन्हें इस प्रकार रेखांकित किया है :

राज्य	प्रमुख भाषा की बोलियों की संख्या
अरुणाचल प्रदेश	12
असम	14
त्रिपुरा	05
नागालैंड	14
मणिपुर	11
मिजोरम	04
मेघालय	03
सिक्किम	02

पूर्वोत्तर राज्यों की सीमाओं से लगे बंगलादेश, नेपाल, म्यांमार, तिब्बत और चीन देश हैं। इन देशों का भाषाई प्रभाव यहाँ की जनजातीय बोलियों और भाषाओं पर पड़ा है। इन राज्यों में कोई एक भाषा नहीं बोली जाती, अपितु अनेक जनजातीय बोलियाँ बोली जाती हैं। इसका प्रधान कारण इस क्षेत्र में जनजातियों की विविधता और बहुलता है। इस प्रकार पूर्वोत्तर में एक भाषा के अंतर्गत अनेक बोलियों की शृंखला है। ''पूर्वांचल की जनजातीय भाषाएँ विभिन्न भाषा परिवारों के साथ संबंध रखती हैं; जैसे – तिब्बती, बर्मन, मौन-ख्मेर, सयमीज-चायनीज परिवार आदि। इन भाषाओं में अनेक बोलियाँ भी हैं। कभी-कभी एक ही छोटे सीमित क्षेत्र में रहने वाले लोगों की भी भाषाएँ अनेक होती हैं।''[2] पूर्वांचल, अर्थात् पूर्वोत्तर भारत की अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इस क्षेत्र की जनजातियाँ छोटे-छोटे क्षेत्रों में रहती हैं और यही कारण है कि इस अंचल में पर्याप्त भाषाई विविधता है।

असम यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से भले ही टुकड़ों में बँट गया हो, पर भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सीमाएँ तो बृहत्तर असम को ही संसूचित करती हैं। ''असम राज्य का आज का रूप छोटा भले हो पर वह आज भी सारे पूर्वोत्तर भारत का प्रतिनिधित्व करता है। एक समय (अंग्रेजों के लिए) आज का त्रिपुरा और मणिपुर राज्यों को छोड़ बाकी सभी राज्य इसी के अंतर्गत थे।''[3]

स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों का पुनर्गठन हुआ और राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् आई सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक चेतना के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय भाषाओं तथा बोलियों का विकास होना प्रारंभ हुआ। पूर्वोत्तर भारत के अधिकतर भागों में एक ही क्षेत्र में बोली जाने वाली अनेक बोलियों की विशिष्टता विद्यमान है। अकेले मेघालय में ही गारो, खासी और जयंतिया जनजातीय भाषाएँ बोली जाती हैं। असम में मुख्य भाषा असमिया के साथ-साथ यहाँ भी गारो, खासी और जयंतिया के बोलने वाले प्रचुर मात्रा में निवास करते हैं। गारो भाषा तूरा, विलियम नगर तथा बाघमारा जिलों में बोली जाती है। ये जिले गारो

हिल्स के नाम से विख्यात हैं। खासी हिल्स के नांगस्टोन, नांगपोंग तथा शिलांग क्षेत्रों में खासी भाषा का वर्चस्व है। इस क्षेत्र में अंग्रेज़ों के आने के पश्चात् यहाँ की तीन प्रमुख भाषाओं – गारो, खासी और जयंतिया का रूप ही बदल गया। खासी भाषा के चेहरे पर अंग्रेज़ों ने अपनी लिपि का लेपन कर दिया। परिणाम यह हुआ कि आज भी खासी रोमन लिपि में लिखी जाती है। जयंतिया बोली खासी के निकट है, जो जयंतिया हिल्स में बोली जाती है। इसे जोवाई क्षेत्र भी कहते हैं।

पूर्वोत्तर के प्रमुख राज्य असम की प्रमुख भाषा असमिया है, परंतु राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न बोलियाँ प्रचलन में हैं। इन बोलियों में बोडो, सोनोवाल और ढिमासा प्रमुख हैं। ये तीनों बोलियाँ कछारी के नाम से जानी जाती हैं, इसलिए इन्हें बोडो कछारी, सोनावाल कछारी और ढिमाशा कछारी भी कहते हैं। असम के कोकराझार, कामरूप, शोषितपुर, दरंग तथा नलबाड़ी जिले बोडो बोली के प्रधान क्षेत्र हैं। इस राज्य की अन्य जनजातीय बोलियों में राभा, कछारी, मिसिंग, देउरी, लालुंग, हमार, बर्मन आदि प्रमुख हैं। असम की बोडो भाषा के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग होता है।

अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न जिलों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें पच्चीस भाषाओं तथा बोलियों को अब तक चिह्नित किया गया है। ये हैं – मोंपा एवं इसकी पृथक्-पृथक् बोलियाँ, वांचू, खोवा, मेंबा, खंबा, तागनि, तांगसा, गोबिन, मशिमी मीजू, मिशमी दिगारू, मिशमी ईद, मिजी, शेरदुक्पेन, सोलुंग, सिंहफो, खाम्ती, नोक्टे, मिशिंग, बैंगनी, देउरी, विशिंग, आदी, आपातानी, हिलमिरी एवं अका। यहाँ की प्रमुख भाषा जेमी है, जिसकी लिपि देवनागरी है।

त्रिपुरा की जनजातियाँ काकबरक भाषा बोलती हैं। यह यहाँ के जनजातियों की प्रमुख संपर्क भाषा है। नागालैंड की प्रमुख भाषा नागामज़ि है। इसके अतिरिक्त, इस प्रदेश में नगा भाषाओं के समन्वय से खाब एक नई भाषा – 'तेनिदिए' आकार ग्रहण करने लगी है। त्रिपुरा में उक्त भाषाओं के अतिरिक्त चकमा भाषा के बोलने वाले भी पर्याप्त हैं, जिनकी संख्या हजारों में है।

मिजोरम में जितनी भी जनजातियाँ निवास करती हैं, उनमें सत्ते, पाइते, मोइ, लुशेई, और म्हार प्रमुख हैं। इतना ही नहीं, लगभग ग्यारह उपजातियाँ भी इनके अतिरिक्त हैं। इन जनजातियों में जो बोलियाँ प्रचलित हैं, उन्हें उन्हीं के नाम से जाना जाता है। जैसे राल्ते जनजाति की बोली राल्ते टंग, पाइते जनजाति की बोली पाइते टंग आदि। इन जनजातियों की बोलियों का जो समन्वित स्वरूप है, उसे 'ओजिया' नाम से जाना जाता है। अन्य जनजातियों की भी स्वतंत्र भाषाएँ नागालैंड में प्रचलित हैं। इन जनजातीय भाषाओं में कोनकू, अंगामी, छोक्री, पोचुरीं, साड़गतम, चाड़ग, फोम, लोघा, चिमचिड्, खेजा, सेमा आदि के नाम विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं।

मणिपुर राज्य की प्रमुख भाषा मणिपुरी है। अन्य राज्यों की भाँति इस राज्य में भी

लगभग 21 जनजातीय भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से सात भाषाएँ प्रमुख हैं। इन भाषाओं की भी अनेक बोलियाँ हैं। इन बोलियों में माओ, पाओ, ताङ्गखुल, रोडग में, लैंङ्ग में, जैमै, खोङ्गजाई, वाइफै, पाइते, थादौ, अनाल, ककचिड, चांदेल, सिकिमार्इ, अन्प्रे, फयेड आदि प्रमुख हैं। भाषाशास्त्रियों ने इन बोलियों को भाषाओं के समूह में वर्गीकृत किया है।

सिक्किम राज्य में भी भाषाई विविधता परिलक्षित होती है। इस राज्य में यद्यपि नेपाली भाषा का बाहुल्य है, पर इसके अतिक्ति भोटिया और लेपचा भाषाएँ भी यहाँ पर अस्तित्व में है। इन भाषाओं की अनेक बोलियाँ सिक्किम में बोली जाती हैं।

भाषाओं और बोलियों की जितनी अधिक विविधता पूर्वोत्तर राज्यों में है, उतनी भारत के किसी अन्य राज्य में नहीं है। पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों में उनकी अपनी मूल भाषा और अन्य भाषाओं के अतिरिक्त बांग्ला, चीनी, नेपाली तथा बर्मी भी बोली जाती हैं। असम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर आदि में हिंदी भी बोली-समझी जाती है।

पूर्वोत्तर भारत की भाषाओं और बोलियाँ पर्याप्त समय तक उपेक्षित थीं। रही-सही कसर अंग्रेज़ों ने अंग्रेजी को थोप कर पूरी कर दी। आज समूचे देश की भाँति इन राज्यों में भी संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रभुत्व स्थापित है। परंतु, स्थितियाँ अब बदलने लगी हैं और हिंदी, अंग्रेजी के साथ कदमताल करने लगी हैं। यहाँ की भाषाएँ और बोलियाँ भी अब युग-चेतना के साथ अंगड़ाई लेकर खड़ी होने लगी हैं। असमिया में तो शंकरदेव के समय से ही समृद्धि परिलक्षित होने लगी थी। आज उसमें विपुल साहित्य उपलब्ध है। गारो और खासी तथा बोडो भाषाओं पर भी पर्याप्त काम हुआ है। खासी-हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश तैयार हो चुका है। खासी में रामायण और महाभारत के अनुवाद हो चुके हैं तथा अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। नेहू (पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय) शिलांग में खासी और गारो भाषाओं में स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन कार्य संपादित किया जा रहा है। इतना ही नहीं, केंद्रीय विश्वविद्यालय गुवाहाटी तथा मणिपुर, सिलचर आदि विश्वविद्यालयों में इन भाषाओं और बोलियों को लेकर अनेक शोध-कार्य हो रहे हैं, इनमें साहित्य लिखा जा रहा है और शब्दकोश तैयार हो रहे हैं। नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा ने पूर्वोत्तर की प्रायः समस्त भाषाओं में सौ के आसपास कोशों का निर्माण किया है और उनका प्रकाशन किया है। बोडो-हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश, मिजो-हिंदी कोश आदि के प्रकाश में आने से जहाँ हिंदी को इस क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, वहीं इन भाषाओं के विकास का पथ भी प्रशस्त हुआ है।

पूर्वोत्तरीय राज्यों में हिंदी का प्रवेश विलंब से हुआ। अंग्रेज़ नहीं चाहते थे कि हिंदी इस क्षेत्र में प्रवेश करे और उनके विरुद्ध वातावरण निर्मित हो। परंतु भावनाओं की अभिव्यक्तियों को भाषाई दीवार रोक नहीं पाती। इस क्षेत्र में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध चेतना भी विकसित हुई और हिंदी के पल्लवन-पुष्पन हेतु भूमि भी तैयार हुई।

अत्याधुनिक सूचना-प्रौद्योगिकी के विस्तार ने इस क्षेत्र के निवासियों को जागरूक और नव-चेतना संपन्न बनाया है। अब इन लोगों के हृदय में अंग्रेजी के प्रति आस्था और हिंदी के प्रति दुराग्रह के भाव नहीं रहे। यहाँ के अधिकांश जन हिंदी बोलते हैं, हिंदी समझते हैं और हिंदी पढ़ते हैं। हिंदी विषय लेकर एम.ए. करने और हिंदी में एम.फिल. एवं पीएच.डी. करने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या में प्रति वर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। हिंदी फिल्मों, हिंदी फिल्मों के गीतों और आकाशवाणी की स्थापना तथा टेलीविजन के प्रभाव ने भी इस क्षेत्र में हिंदी की स्थापना में योगदान दिया है। इतना ही नहीं, हिंदी ने भी क्षेत्रीय बोलियों और भाषाओं को फलने-फूलने के लिए समुचित वातावरण तथा पर्याप्त अवसर प्रदान किए हैं। हिंदी ज्येष्ठा है, अपनी अनुजाओं को पीछे रखकर क्या वह समृद्ध और सुखी रह सकती है? कदापि नहीं। यही कारण है कि इस क्षेत्र में स्थान-स्थान पर लगे सूचना-पटल हिंदी और अंग्रेजी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं में भी लिखे जा रहे हैं। डॉ. अजित कुमार सिंह का मत है कि ''विश्व के आधुनिक वैज्ञानिक विचारकों की राय में आने वाला नया युग 'नई प्रौद्योगिकी' का युग होगा। इस नई प्रौद्योगिकी से समस्त भारतीय भाषाएँ भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगी। इस प्रौद्योगिकी का प्रभाव पूर्वोत्तर भारत की सभी छोटी-बड़ी भाषाओं पर पड़ना आरंभ हो चुका है। सूचना संसाधित उपकरणों की उपस्थिति तथा निरंतर बढ़ते प्रयोग से पूर्वोत्तर भारत की सभी मुख्य भाषाएँ और जनजातीय भाषाएँ नई शब्द-संपदा के संपर्क में आ रही हैं। सभी जनजातीय भाषाओं की शब्द-संपदा और अभिव्यक्ति की क्षमता का दायरा बढ़ता जा रहा है। वर्तमान युग की सूचना क्रांति से पूर्वोत्तर भारत की भाषाओं को भी अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हमें जोड़ना होगा।''

अब तो इस क्षेत्र की असमिया, मणिपुरी, बांग्ला तथा नेपाली भाषाओं को संविधान में स्थान दिया गया है। इससे, इन भाषाओं की ही नहीं, इनसे संबद्ध अनेक बोलियों की प्रतिष्ठा में भी श्रीवृद्धि हुई है।

सुखद आशा-संचरण के मध्य निराशाजनक पक्ष यह है कि पूर्वोत्तर की अनेक जनजातीय बोलियाँ या तो लुप्त हो गई हैं या लुप्त होने की स्थिति में हैं। यदि इनके संरक्षण पर यथाशीघ्र ध्यान केंद्रित न किया गया, तो इनके सांस्कृतिक स्वरूप से देश वंचित हो जाएगा।

❑

संदर्भ

1. पूर्वोत्तर भारत का इतिहास, डॉ. अजित कुमार सिंह, पृष्ठ 242
2. जनजातीय भाषाएँ और हिंदी शिक्षण : सं. न.वी. राजगोपालन, पृष्ठ 6
3. वही, पृष्ठ 30
4. पूर्वोत्तर भारत का इतिहास, डॉ. अजित कुमार सिंह, पृष्ठ 241

प्रो. बी.वै. ललितांबा

कन्नड़ साहित्य में अनुवाद की परंपरा और विकास

इस आलेख के दो घटक हैं। पहला घटक कन्नड़ अनुवाद परंपरा से जुड़ा हुआ है, और दूसरा कन्नड़-हिंदी-कन्नड़ से संबंधित है। 'अनुवाद' द्विभाषिक संप्रेषण का साधन है। अनुवाद के माध्यम से हम दो संस्कृतियों को और जन-समुदाय को पिरोते हैं। कन्नड़ साहित्य ने आद्यंत इस आदर्श का परिपालन किया है।

करीब नौवीं शती की उपलब्ध पहली रचना से आज तक लगातार कन्नड़ साहित्य में आदान-प्रदान संपन्न हो रहा है। कन्नड़ भाषा में उपलब्ध पहली रचना एक अलंकारशास्त्र का ग्रंथ है। उसका शीर्षक 'कविराजमार्ग' है। उससे पूर्व का कोई सृजनात्मक साहित्य हमें आज तक उपलब्ध नहीं हो पाया है। 'कविराजमार्ग' का काफी अंश मौलिक होते हुए उसमें संस्कृत के 'काव्यादर्श' का अनुवाद भी है। कन्नड़ के एक साहित्यकार ने किसी अन्य संदर्भ पर इसे 'कर्मणिय सरदोळ पवळमं कोदंते' अर्थात् *काली मणियों की माला के बीच मूँगा पिरोने जैसे* कहा है। उसी तरह 'कविराजमार्ग' में अनुवाद और मौलिकता, दोनों का परस्पर समावेश देखने को मिलता है। इस ग्रंथ के पहले और दूसरे परिच्छेद का अधिकांश भाग मौलिक है। तीसरे परिच्छेद में कुल मिलाकर 237 पद्य हैं, जिनमें 98 पद्य लेखक की स्वतंत्र रचनाएँ हैं, फिर 21 पद्य मूल से परिवर्तित हैं। अनुवादक की प्रतिभा भी इसी बात में होती है कि वह कुछ ऐसी अनहोनी बात अपनी भाषा को दे, जो उपयोगी हो, ज्ञानवर्धक हो – कोरा अनुवाद होकर नहीं रह जाए। कविराजमार्गकार ने इस नीति का खूब परिपालन किया है। वे एक तरफ कर्नाटक प्रदेश की सीमाओं का उल्लेख करते हैं तो दूसरी तरफ अनुवाद करते हैं, और उदाहरण स्वयं भी देते हैं, मूल का अनुवाद और उसका विस्तार भी देते हैं, स्वयं भी नए सिद्धांतों की रचना करते हैं। इस ग्रंथ में वे ध्वनि को भी एक अलंकार का दर्जा दे देते हैं। कुल मिलाकर यही कह सकते हैं कि अनुवाद का पहला नमूना ही कन्नड़ में उपलब्ध सृजनेतर रचना है।

अनुवाद एक जटिल शब्द है। इस कार्य के साथ अनेक प्रक्रियाएँ जुड़ी हुई हैं। इसलिए हम उसे छायानुवाद, रूपांतरण आदि कई नाम देते हैं। प्लेटो या सार्ते का मूल उच्चारण क्या होगा हम नहीं जानते। अपनी भाषा के हिसाब से उसे अफलातून, सार्त्र आदि अपनाकर पचा लिया। Alxender के ग्रीक, रोमन उच्चारण की तरफ हम ध्यान नहीं देते – केवल अपनी भाषा ध्वनि के साथ उसका समीकरण कर लिया, काम हो गया।

कन्नड़ की दूसरी रचना 'ओड़ाराधन' है। डॉ. अ.न. उपाध्ये के अनुसार इसमें प्राकृत ओड्डकथा से रचित कहानियाँ ली गई होंगी। प्राकृत-कन्नड़ भाषाओं की निकटता के परिणामस्वरूप यह रचना बनी होगी। कहाँ बिहार में महावीर का जन्म और द्रविड़ संस्कृति में पली कन्नड़ भाषा, इसमें जैन संस्कृति का प्रवेश। इस तरह दो दूरागत संस्कृतियों को पास लाने में कन्नड़ समर्थ हुई है। यह भी शायद आठवीं-नौवीं शताब्दी की रचना है। देश की अनेकानेक श्रेष्ठ भाषाओं में समकालीन संदर्भ में भी कन्नड़ का स्थान अन्यतम है। कन्नड़ ने प्राचीन समय से भी देश की अनेकानेक संस्कृतियों को जोड़ा है, भाषाओं को पास-पास लाने में समर्थ भूमिका निभाई है।

दसवीं सदी से समकालीन संदर्भ तक इस प्रकार के आदान-प्रदान के कार्य से कन्नड़ साहित्य बहुत समृद्ध हुआ है। कन्नड़ साहित्य की यह भी विशेषता रही है कि आपको इस प्राचीन साहित्य में कोरा अनुवाद या नीरस अनुवाद नहीं मिलता। अनुवाद को मात्र एक साधन के रूप में रखकर अधिकांश साहित्यकार अपनी मौलिक प्रतिभा को ज्यादा उजागर करते आए हैं। आदि कवि पंप दसवीं शताब्दी के महाकवि माने जाते हैं। उनकी दो रचनाएँ हैं, जिनमें से एक जैन पुराण काव्य है और दूसरा लौकिक काव्य है। दोनों रचनाओं में तुलनात्मक तत्व हैं। पुराण काव्य 'आदि पुराण' जिनसेनाचार्य द्वारा विरचित संस्कृत पूर्व पुराण से प्रभावित ग्रंथ है, जोकि लौकिक काव्य 'पंप भारत' या 'विक्रमार्जुन विजय' महाभारत पर आधारित है। यह महाभारत का भावात्मक अनुवाद है। मगर लेखक का उद्देश्य और रचना स्वरूप अनुवाद का शरीर नहीं पाते। वह इसलिए कि व्यास कवि रचित संस्कृत महाभारत एक लोकप्रिय रचना थी। उसकी पठनीयता थी तो अपने आश्रयदाता के शौर्य गुणों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन पंप को करना था, इसलिए उन्होंने अर्जुन के व्यक्तित्व के साथ राजा अरिकेसरी के शौर्य-गुणों को समीकृत कर उसका शीर्षक 'विक्रमार्जुन विजय' रखा। गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली में रचना की गई। कथा भाग के साथ कोई परिवर्तन नहीं किया। 'समस्त भारतवनपूर्वमागे' (समग्र भारत को अपूर्व रीति से) महाभारत की कथा के प्रमुख भागों पर केंद्रित कर संक्षेप में उन्होंने कहानी कहने की कोशिश की है। यानी इसे संक्षिप्तानुवाद की श्रेणी में गिन सकते हैं। अनुवाद की यह परंपरा पंप तक ही समाप्त नहीं होती। दसवीं शती के

प्रमुख तीन कवि-रत्नत्रय – पंप, रन्न और पोन्न – में से रन्न ने भी यही काम करने की कोशिश की है। रन्न ने महाभारत के पात्र भीम के साथ आश्रयदाता सत्याश्रय के गुण-तत्वों का समावेश कर मूल महाभारत को अत्यंत दृश्यात्मक शैली से रचा है। पुनःसृजन का यह एक श्रेष्ठ नमूना है।

इसके बाद 11वीं सदी में नागवर्मा प्रथम का 'कर्नाटक कादंबरी', संस्कृत में बाणभट्ट विरचित 'कादंबरी' का कन्नड़ भाषा में रूपांतरण, दुर्गसिंह रचित 'पंचतंत्र' का कन्नड़ अनुवाद आदि इस कन्नड़ अनुवाद परंपरा में अनुवाद कला की प्रतिष्ठापना में सहायक श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। नागवर्मा के अनुवाद की यह विशेषता है कि उन्होंने बाणभट्ट की गद्य रचना को गद्य-पद्य मिश्रित चंपू में परिवर्तित किया, समस्त पदों के प्रयोग का निवारण किया, मूल रचना का कथा सार, पात्रों की जीवंतता, सरस वर्णन शैली आदि विभिन्न पक्षों के संदर्भ में देखें तो यह कहा जा सकता है कि इसमें मूल रचना के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय नहीं किया गया है। नागवर्मा ने इसे चित्ताकर्षक ही बनाया है। कन्नड़ साहित्य के इतिहासकार कहते हैं कि बाण की वाणी मूसलधार वर्षा करवाने वाले बादलों जैसी है तो नागवर्मा की कला उस वर्षा से बने तालाब को रोककर कंद वृत्त से परिपूर्ण वचनों की क्यारी में पानी को बहाने वाले माली की कुशलता जैसी है। दुर्गसिंह का 'पंचतंत्र' भी इसी तरह पुनःसृजन की विशिष्टताओं से परिपूर्ण रचना है। ग्रंथकार स्वयं *'पोसतगिरे विरचिसुवेम्'* अर्थात् *'नए तरीके से रचता हूँ'* कहते हैं।

यूजीन ए. नाइडा अनुवाद की सफलता में पाठक के मन की तृप्ति पर जोर देते हुए अनुवाद को गद्य बनाने का आग्रह करते हैं। जहाँ अनुवादक स्वयं इस भावना में तल्लीन होता है, वहाँ अनुवाद कला को पढ़ाने की कोई जरूरत नहीं रहती। दुर्गसिंह के समय या उससे पूर्व के कवियों को अनुवाद की शिक्षा किसने दी होगी? नयसेन जोर देकर सरल कन्नड़ में अपनी प्रस्तुति देते हैं, नागवर्मा बाणभट्ट को सरल बनाते हैं और दुर्गसिंह उसे नए तरीके से कहकर पाठक के मन में रस संचार कराते हैं। इस उद्देश्य से दुर्गसिंह मूल पंचतंत्र के कथांश की रक्षा करते हुए पद्य-गद्य मिश्रित चंपू शैली के साथ देसीपन मिलाने की उनकी इस अपूर्व शैली के कारण कन्नड़ का वह पंचतंत्र अनुवाद तक सीमित न होकर मौलिकता के श्रेष्ठ गुण को दर्शाता है।

कन्नड़ के प्राचीन साहित्य की अनुवाद परंपरा का अपना विशेष महत्व है। हिंदी से उसका कुछ संबंध नहीं होते हुए भी आज इस भाषा में जो सुंदर और श्रेष्ठ अनुवाद आ रहे हैं, इसके लिए यह इतिहास पारंपरिक रूप से बहुत बड़ा संबल देता है। हमारे इन अनुवादकों ने बाद के कृतिकारों को एक दृष्टि दी है। अनुवाद के चयन का महत्व और उसे लक्ष्य भाषा में पहुँचाते समय शैली आदि में परिवर्तन लाने की अपनी स्वतंत्रता,

समकालीन परिवेश में उसे अपनी भाषा की संपदा बनाने का अहं विश्वास ये सभी हमारे इन प्राचीन अनुवादकों से – सर्जकों से – हमें मार्गदर्शक सूत्र प्राप्त होते हैं। हमने पुराण काव्यों का चयन करके इन कवियों को देखा, धार्मिक रचनाएँ और जनप्रिय रचनाओं का चयन इन कवियों ने किया। यहीं तक अपने को सीमित न कर जीवन और मनोविज्ञान संबंधी ग्रंथों को भी अपनाया। इसी श्रेणी में 11वीं सदी में ही चंद्रनाथ नामक कवि ने 'मदन तिलक' की रचना की। यह संस्कृत कामशास्त्र का संग्रहानुवाद है। 'पलउ मतंगळनोंदुमाडि', 'नानच्छन्दायनूर पद्य' और 'मुनिमतमने पेळदनेसेये पोसगन्नडदिं' नामक कवि के ये वाक्य अनुवाद समीक्षा के लिए महत्व के हैं। एक तो यह कि इस अनुवाद में कई विचारों का संग्रह है। प्रायः इस प्रामाणिकता की अपेक्षा हर अनुवादक से रहती है। 'नाना पुराण निगमादिकं यद्रामायणे क्वचितन्यतोपि' और उसी कोशिश से रचना रोशन होती है। चंद्रनाथ मूल के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट कर कहते हैं, मैंने मूल लेखक के विचारों को ही कन्नड़ की आधुनिक शैली में कहा है। जैसे 19वीं सदी में राजा लक्ष्मणसिंह कहते हैं कि शब्द के स्थान पर शब्द, कहीं किसी परिवर्तन के बिना मैंने अपना अनुवाद किया है। तुलसीदास ने भी देसी छंदों में रामायण को पाठकों के लिए हृदयंगम कराया। उनसे भी बहुत पहले के इन कन्नड़ रूपांतरकारों ने भी वही किया। चंद्रनाथ कहते हैं कि मैंने नाना छंदों का प्रयोग कर पाँच सौ पद्यों की रचना की है। कन्नड़ के प्राचीन साहित्य में इस तरह अनुवाद कला के अनेकानेक सूत्र प्राप्त होते हैं।

12वीं सदी के आरंभ की रचना नागचंद्र के 'रामचंद्र चरित पुराण' की विशेषता ऐसी है कि उन्होंने रामायण कथा का जैन रामायण में रूपांतरण किया है। अनुवाद कला की दृष्टि से उनकी 'अपूर्वमने रामकथेयनभिवर्णिपुवें' उक्ति हमारे लिए यहाँ प्रासंगिक बनती है। आज जबकि अनुवादक में आत्मकुंठा और लड़खड़ाहट दिखाई देती है, उसे दूर करने में हमारे इन प्राचीन अनुवाद-सर्जकों से सहायता और प्रेरणा दिखाई देती है। रचना के प्रति भारतीय भाषा परिषद ने भी 'भारतीय उपन्यास कथा सार' 1, 2 प्रकाशित किए हैं। उनमें कन्नड़ के भी दस उपन्यासों के कथासार मेरे द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। इस संक्षेपानुवाद का प्रयोग कन्नड़-भाषी के लिए बहुत पुराना है। नागचंद्र ने अपनी उक्त रचना में कहा 'पिरिदेनिसिर्द रामकथेयं किरिदागिरे – विस्तृत लगती' (संस्कृत) रामायण को छोटा बनाकर कहने की अपनी शक्ति की बात वह कहते हैं। अनुवाद स्वरूपों के संबंध में एक और बात। रचना की श्रेष्ठता के कारण कई बार एक ही रचना के कई भाषाओं में कई प्रकार के अनुवाद किए जाते हैं। रूपांतरण भी होते हैं।

उस सरणी में रामायणों के रूपांतरण की कोई सीमा नहीं। रामायण पर कई भाषाओं के समय-समय पर कई प्रकार के प्रयोग होते रहे हैं। प्राकृत भाषा में विमलचंद्र सूरि

ने इसी तरह जैन रामायण रची। सूरि ने अपनी इस रचना में कई तरह के प्रयोग किए। जैसे 'रावण' के पात्र को उन्होंने बहुत महत्व दिया। रावण उसमें उदात्त गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति है। 'दुर्विधि' के वश होकर अर्थात् जैनी विधि के खेल पर विश्वास करते हुए, वह सीता पर आसक्त होता है, उस पर जोर डालता है, मगर बाद में उसकी पति-भक्ति को देखकर पश्चात्ताप कर पुनीत होता है। नागचंद्र के 'रामचंद्रचरित पुराण' का रावण भी सूरि से लिया गया जैन रावण है, जिसमें पश्चात्ताप के कारण पापहरण का प्रश्रय है। नागचंद्र ने उस पर भी लेखकीय स्वतंत्रता दर्शा कर रावण की निंदा भी की है। समीक्षक डी.एल.एन. कहते हैं, आईने के बीच-बीच में घी के कण गिरने से जिस तरह फीका होकर भी खाली जगह सुंदर दिखाई देती है, वैसे ही यह रचना मनोहारी है। दूसरी बात यह भी कि रचना का तुलनात्मक महत्व उसके मानवीय संदेश के कारण भी होता है। उस दृष्टि से रावण के व्यवहार में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन (ट्रांसिशन) की कल्पना कर आत्म-परीक्षण के महत्व को कवि ने अंकित किया है और दुरंतता से बचाने का मार्ग प्रशस्त किया है। यही अंतरण के पुनःसर्जन की सार्थकता भी है। बारहवीं शताब्दी के कर्णपार्य विरचित 'नेमिनाथ पुराण' भी रूपांतरण का एक और नमूना है। यह हरिवंश पुराण का एक सीमा तक जैन रूपांतरण है। तेरहवीं शती में जन्न कवि की रचना 'यशोधरा चरित' भी संस्कृत कवि वादिराज की रचना का एक सरल कन्नड़ अनुवाद है। उसमें भी कथा कहने की शैली, पात्र-चित्र आदि में बिंब निर्माण एवं शब्द-शक्ति में कवि प्रतिभा चमक उठी है। 'पदविन्यासदोळ् पदविलास सेम्पुवेत्तिर्द काव्यद मैयोळ समुदाय शोभे' विदेशों में आजकल स्टोरी री-टोल्ड, यानी कहानी को अपने तरीके से कहने के प्रयोग चल पड़े हैं। इस तरह के प्रयोग हमारे प्राचीन काव्यों में बहुत बड़ी मात्रा में दिखाई देते हैं। पंद्रहवी-सोलहवीं शती में कुमार व्यास (गदुगिन नारणप्पा) द्वारा रचा गया 'कर्णाट भारत कथा मंजरी' उस तरह के प्रयोग का एक श्रेष्ठ नमूना है।

भामिनी षट्पदी कन्नड़ का एक देसी छंद है। कवि ने महाभारत के प्रथम दस अध्याय-आश्वासों की रचना की है। उत्तर भारत में तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की जो मान्यता है, वैसी ही कर्नाटक में इस भारत की है। इसे 'गदुगिन भारत' के नाम से भी लोग जानते हैं। 'रामचरितमानस' के वाचन की शैली की तरह इस महाभारत की भी एक अलग गायन शैली का विकास हुआ है, जिसे गमक कहते हैं। भाषा प्रयोग की दृष्टि से भी इसकी अपनी विशिष्टता है। कुमार व्यास रूपकों के सम्राट भी कहलाते हैं। कुमार व्यास के बाद कुमार वाल्मीकि ने रामायण का कन्नड़ में अनुवाद किया है। लोग इसे 'तोरवे रामायण' के नाम से भी जानते हैं। यह भी एक तरह से भावानुवाद ही है। जैसे इस रचना के आधे से ज्यादा भाग में युद्धकांड को स्थान दिया गया है।

बाकी बातें वे सीधे कथन द्वारा संक्षेप में कह देते हैं। मूल रामायण में काफी परिवर्तन यहाँ पर कवि ने किया है जिससे कथा को आकर्षक बनाने में सहायता मिली है। यहाँ मंथरा रिश्तेदार दासी न होकर माया का अवतार है और रावण सीता से यह कहकर झूठ बोलता है कि मारीच नामक मायामृग के हाथ से राम की हत्या हुई आदि।

इस तरह कथाक्रम में परिवर्तन लाकर रचना की मौलिकता का जामा पहनाना भी अनुवाद का एक स्वरूप होता है जो कवि अनुवादक की स्वतंत्र चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। इसके बाद तिम्मण्ण कवि की विशेषता यह है कि कुमार व्यास की रचना के अगले सात पर्व इन्होंने रचे हैं। यानी ज्वाइंट अनुवाद अथवा खंडानुवाद का यह नमूना है। उत्तरोत्तर भारत की कन्नड़ प्रस्तुति लक्ष्मीश द्वारा जैमिनी भारत के रूप में हुई। लक्ष्मीश की रचना संस्कृत जैमिनी भारत का संग्रहानुवाद (सार संग्रह) है। यह सारानुवाद का एक विशिष्ट प्रयोग है। मूल रचना के 68 अध्याय जहाँ पर 34 संधियों में संचित हुए हैं। कुछ कोशों को छोड़कर अथवा कार्यालयीन अनिवार्यता में हालाँकि शब्दानुवाद का विशेष महत्व होता है। भाषा और साहित्य के अनुवाद क्षेत्र में लक्ष्य भाषा में पाठक वर्ग के साथ संप्रेषण के मनोविज्ञान को ध्यान में रखना भी बहुत जरूरी होता है। ध्यान नहीं देने से वह नीरस होकर असफल होता है। लक्ष्मीश ने कथा कहने में मूल के प्रति इतनी ज्यादा निष्ठा जताई है कि संप्रेषण और पठनीयता में कमी आ जाती है। इसी तरह उस रचना को जिंदा रखने वाले तत्व उसकी स्वतंत्र चेतना ही हैं। लक्ष्मीश ने मूल रचना के पुराण कथन को यहाँ काव्य प्रधान कथन का रूप दिया है, इसलिए यह आकर्षक बन पड़ी है। रसात्मक सन्निवेश में पाठक को डुबोते चलने की कला भी इस रचना में उजागर होती है। शैली में देशी और पारंपरिकता का सम्मिलन कर छंदों में प्रौढ़ पांडित्य के दर्शन होते हैं।

इसी बीच भगवद्गीता का कन्नड़ भाषानुवाद 'वासुदेव कथामृत' के नाम से 16वीं-17वीं शताब्दी में नागरस ने किया है। यह एक सरल, स्पष्ट, शुद्ध कन्नड़ अनुवाद है। रचना का काफी सुंदर रूप इसमें उभरा है। 'भक्ति द्रविड़ ऊपजी' कहते हैं कि कर्नाटक संगीत की आधार भूमि कन्नड़ भाषा है, तो इसका साहित्य 'दास वाङ्मय' नाम से जाना जाता है। इस दास वाङ्मय का मूलाधार ही भागवत है। 'नयन बिनु वाणी – गिरा अनयन' अनुवाद शब्द इन दास-भक्तों की कारयित्री प्रतिभा के आगे बहुत छोटा और हल्का ठहरता है। इन कवियों ने संगीत शास्त्र की परंपरा की नींव डाली, जिसमें दूर-दूर तक अनुवाद की जटिलता की गंध भी देखने में नहीं आती।

श्रीपादराय ने धर्म ग्रंथों को कन्नड़ भाषा में लाने का क्रांतिकारी निर्णय लिया जिसके लिए उन्होंने भागवत के अनुयायियों की एक टोली तैयार की और उन लोगों से कन्नड़

में कीर्तन गीत गवाया। कीर्तन गीतों को कन्नड़ भाषा में 'देवरनाम' कहते हैं, जिसे हिंदी में नाम संकीर्तन कहा जाता है। उनमें से प्रमुख हैं, 'भ्रमर गीत', 'वेणु गीत', 'गोपी गीत' आदि। श्रीपादराय ने 'रंग विट्ठल' को अंकित किया था। इसी तरह व्यासराय, पुरंदरदास (जिन्हें दास श्रेष्ठ कहा जाता है), राघवेंद्र तीर्थ, कनकदास आदि भक्तों ने खूब दिल खोलकर गाया। भागवत कन्नड़ गीतों और कीर्तनों में प्रतिरूपित हुआ और इन गायक-सर्जकों के कारण कर्नाटक संगीत के नाम से वैश्विक कालजयी संपदा बन गई। इन गीतों में शृंगार, वात्सल्य और हास्य रस का प्रवाह सरस होता है। 'होगदिरेलो रंग बागिलिंदाचेगे', 'रंग नोलिदा नम्म कृष्ण नोलिदा' जैसी पुरंदरदास की अनेकानेक रचनाएँ आज भी विदेशी तक झूम-झूमकर गाते हैं।

अनुवाद परंपरा में कुछ टीका ग्रंथ जैसे 'भागवत, शेषधर्म भारत' आदि भी उन्नीसवीं सदी में रचे गए। इस तरह कुल मिलाकर बीसवीं सदी तक के कन्नड़ साहित्य में अनुवादों की एक शक्तिशाली परंपरा दिखाई देती है। इनमें अनुवाद और अनुवादनीयता जैसी समस्याओं के हल में एक व्यावहारिक विमर्श प्रकट हुआ है।

हिंदी-कन्नड़ अनुवाद

भाषा मूल रूप से सामाजिक संपत्ति है। समाज में उसका जन्म होता है। समाज के लिए उसका उपयोग होता है। आखिर समाज है भी क्या? एक जमा एक अर्थात् व्यक्ति के साथ व्यक्ति का मिलना, यानी न्यूनतम दो व्यक्तियों के आसपास आने मात्र से ही समाज का निर्माण होता है। यह पास आने की प्रक्रिया मनुष्य निर्मित ही नहीं, यह प्राकृतिक भी है। पास आने से जुड़ाव बनता है। उससे क्रिया निर्मित होती है। प्राकृतिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है। एक छोटा-सा जीव खरगोश भी दूसरे खरगोश को देखकर रुक जाता है, उससे स्नेह जताता है, फिर मनुष्य के साथ तो जागृत मस्तिष्क होने से अनेक प्रयोजन निर्मित होते हैं। इसी कारण दो व्यक्तियों के मिलते ही संवाद निर्मित होता है। संवाद को स्पष्ट बनाने के लिए ही उसने भाषा को जन्म दिया है। भाषा संवाद का एक श्रेष्ठ साधन है। भाषा के द्वारा सामाजिक संरचना के और वैश्विक व्यापार के सभी संवाद निर्मित होते हैं। इसीलिए संवाद के विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर भाषा को भी उसके अनुकूल निर्मित किया जाता है। इस तरह हर विषय की एक विशिष्ट भाषा शैली मन में संचित होती है। साहित्य भी संवाद का एक विशिष्ट नमूना है। साहित्य के माध्यम से संवाद निर्माता अपने समाज के लिए कई सुंदर तरीके अपनाकर अपना संवाद रचता है, क्योंकि उसका उद्देश्य अनेक लोगों के साथ अकेले संवाद करना होता है और उस समाज को मजबूती देना भी होता है। वाचिक संवाद जब अस्तित्व में था, उस समय से आज तक उसने साहित्य का आधार अपनाया है।

मनुष्य स्वभाव से ही महत्वाकांक्षी है। इस कारण कई उद्देश्यों से उसके दैहिक और वैचारिक संचार का विस्तार होता है, हुआ है। ऐसी स्थिति में भौगोलिक सीमाओं में बँधी भाषा का भी विकास होता है। एक से अनेक के बीच संपर्क में भाषा की सीमा को बाधक बनने से रोकने के लिए द्विभाषिक संप्रेषण निर्मित करने की जरूरत आ पड़ती है। इसी के परिणामस्वरूप मनुष्य ने एक विशिष्ट संवाद स्वरूप अर्थात् द्विभाषिक संप्रेषण का निर्माण किया है और उसका साधन ही अनुवाद है। अनुवाद का साधन प्रायः विश्व की हर श्रेष्ठ भाषा ने अपनाया है। कन्नड़ भाषा में भी शुरू से कई भाषाओं के मध्य भाषांतरण के सहारे संवाद बना है। हिंदी-कन्नड़ इन दोनों भाषाओं के मध्य अनुवाद की घटना 20वीं सदी की और उससे शुरू कर आज तक की बात है। अनुवाद के संदर्भ में जिस हिंदी का आदर्श समीक्षक के आगे प्रस्तुत होता है, वह बीसवीं सदी में बनी मानक हिंदी है, उसका स्वरूप और उसका साहित्य है। इसके दो कारण हैं, बीसवीं सदी के पूर्व की हिंदी का समाज अवधी बोली, मालवी, निमाड़ी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी आदि अनेक देसी बोलियाँ और मध्यकालीन भाषा रूपों से जुड़ा हुआ था, जिसे आधुनिक हिंदी निर्माताओं ने और हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी के रूप में पहचाना था। वे सभी उपभाषाएँ और बोलियाँ आर्य वर्ग की थीं। कन्नड़ के साथ यह बात नहीं, कन्नड़ क्षेत्र की सभी बोलियाँ प्राचीनकाल से आज तक कन्नड़ की ही अन्य शैलियाँ रहीं। तुळु, कोडगु, कोंकणी आदि का हमेशा से अलग अस्तित्व रहा, आज भी वे स्वतंत्र बोली और भाषाओं के रूप में विराज रही हैं। कन्नड़ द्रविड़ वर्ग की भाषा है। हिंदी में दो लिंग हैं। लिंग निर्णय में काफी दिक्कतें आती हैं, अभ्यास और स्मृति का आधार अपनाकर भी लिंग निर्णय करना पड़ता है। जहाँ पर कन्नड़ भाषा में तीन लिंग हैं, उसके अनुसार ही क्रिया रूप बनते हैं। जिस तरह हिंदी में 'यह' वस्तु हो सकती है, व्यक्ति भी। कन्नड़ में 'अवळु' स्त्रीलिंग है; 'अवनु' पुल्लिंग; और 'अदु' नपुंसक लिंग हैं। हिंदी में यह आती है; बस आती है; प्लेन आता है; लड़की भी आती है; लड़का भी आता है आदि इन सब वाक्यों में क्रिया रूप वहीं तक सीमित होते हैं। वचन भी हिंदी में दो हैं, कन्नड़ में तीन हैं। यह इन दोनों भाषाओं का जातिजन्य स्वभाव है, और उनकी खूबी भी है। द्विभाषिक संप्रेषण में इन दोनों भाषाओं की खूबियों की जानकारी रखकर समन्वय साधने से ही सफलता मिल पाती है, अन्यथा नहीं।

किसी भी व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करते समय उसका व्यवहार करने वाले समाज को और उसके भूगोल को भी समझना बहुत जरूरी होता है। अभिमन्यु अनंत के समाज पर भोजपुरी मूल का भले ही काफी असर हो, मॉरिशस के समाज से वे कभी छूट नहीं पाते, क्योंकि उन्होंने वहाँ जन्म लिया है, उसकी जमीनी गंध से वे दूर नहीं हो पाते।

उसी तरह कन्नड़ समाज के पारिवारिक संबंधों में 'अत्तिगे' बड़े भाई की पत्नी ही होती है, इसके साथ पति की बहन भी होती है, छोटी बहन 'नादिनी' होती है। वहीं हिंदी समाज में 'भाई' एक सामान्य शब्द है, उसमें बड़े-छोटे का अंतर नहीं होता है। भाई की पत्नी, 'भाभी' ही होती है, वह कभी 'ननद' नहीं होती। इसी तरह 'जेठ' के लिए कन्नड़ में अलग शब्द नहीं हैं। वे 'भावा' होते हैं, 'भावा' जीजा जी भी होते हैं। जेठानी 'ओरगित्ती' होती है। सब्जी, आचार-विचार, तीज-त्योहार आदि हर किसी में कुछ स्थानों पर समानता हो सकती है, कुछ में वैपरीत्य हो सकता है। एक ही तीज-त्योहार के साथ भिन्न नाम से भिन्न आचार भी होते हैं। 'चैती' सिंधियों में चेती चंड है, मराठी समाज में गुडी पड़वा है, कन्नड़ में युगादि है। मराठी समाज गुड़ी (एक डंडी को साड़ी पहनाकर) सजाकर पर्व मनाते हैं, कन्नड़ समाज नीम-गुड़ खाकर नव वर्ष मनाता है। इसके अलावा, दोनों में से मराठी पूरण पोळी बनाते हैं, कन्नड़ के परिवार में होळिगे बनाते हैं, मगर चीज वही है। ''भाषावैज्ञानिक पोळी-होळिगे का सामाजिक ध्वनि साम्य निर्मित होता है।'' इस तरह परस्पर दोनों समाजों के मध्य संचार और आपसी संबंधों का साम्य बना हुआ है। हिंदी-कन्नड़ अनुवादों में भाषावैज्ञानिक कसरत जरूरी होती है। हिंदी-कन्नड़ समाज भौगोलिक दृष्टि से भारतवासी हैं, एक ही देश की संतान हैं। स्थूल एवं सूक्ष्म दृष्टि से दोनों में सांस्कृतिक साम्य ज्यादा है। मगर आहार और वेशभूषा में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर वैदृश्य भी है। 'रोटी' को ही लेने पर दक्षिण कन्नड़ जिले में चावल के आटे को भाप में पकाकर पतली-सी रोटी बनाई जाती है, उसे 'अक्कि (चावल) रोट्टि' कहते हैं; मैसूर प्रदेश में चावल के आटे के साथ हरा धनिया, कच्चा नारियल, हरी मिर्च आदि मिलाकर गूँथकर उसे तवे पर या कड़ाही पर थापकर आँच पर चढ़ाकर बनाते हैं, जिसे 'अक्कि रोट्टि' कहते हैं। हिंदी प्रदेश में अधिकांश वस्तुएँ गेहूँ से बनती हैं, इसलिए वहाँ की रोटी, फुलका आदि के स्वरूप का कर्नाटक की, कन्नड़ भाषा की रोटी से तालमेल नहीं बैठता।

वेशभूषाओं में भी अंतर है। जैसे, गुजरात-मालवा और कर्नाटक में साड़ी को पहनने के तरीके में बहुत अंतर है। इसलिए उनके साथ विशेषण लगते हैं। ये कुछ सादृश्य मूलक, वैरुध्यसूचक भाषाई उदाहरण हैं, जो अनुवादक के आगे कई बार दीवार निर्मित करते हैं, और इससे ही अनुवाद की सीमाएँ बनती हैं। हिंदी-कन्नड़ अनुवादों की आवश्यकता से किसी को इंकार भी नहीं, और ये काफी बड़ी मात्रा में हुए भी हैं। हालाँकि हिंदी के अलावा भी कई अन्य देशी-विदेशी भाषाओं के साथ कन्नड़ में काफी बड़ी मात्रा में अनुवाद और आदान-प्रदान का कार्य संपन्न हुआ है। अंग्रेजी-कन्नड़ के मध्य अपेक्षाकृत ज्यादा आदान-प्रदान हुआ है, और उस साहित्य के पाठक भी ज्यादा हैं। राष्ट्रीयता की

दृष्टि से भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने में हिंदी का स्थान सर्वोपरि है। 'हिंदी' को हमने बनाया और विकसित किया है। इसका निर्माण भी उपर्युक्त उद्देश्य से ही हुआ और इसीलिए यह भाषा घोषित हिंदी प्रदेश तक सीमित होकर नहीं रह सकती। हिंदी का भाषा रूप भारत की सभी प्रादेशिक भाषा-शैलियों का जामा अपनाकर ही सुदृढ़ बन सकता है। इसके लिए हिंदीतर साहित्य का हिंदी में आना और वह हिंदी के स्वभाव में स्वीकृत होकर भारतीय साहित्य निरूपित होना जरूरी है तथा हिंदी द्वारा भारतीय भाषाओं में आदान-प्रदान निर्मित हो, इसकी भी आवश्यकता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति में भारतीयता के आवरण में ही हिंदी-कन्नड़ अनुवाद हुए हैं। पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों के कर्नाटक और हिंदी के इतिहास में इन दोनों भाषाओं के बीच कई तरह के आदान-प्रदान कार्य हुए हैं। सृजनात्मक और सृजनेतर साहित्य का अनुवाद हुआ है, मौलिक रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

अनुवाद की भावभूमि हमेशा ही जोड़ने की और जुड़ने की भावना लेकर आती है। कन्नड़-हिंदी क्षेत्र के बीच इस तरह के सृजनात्मक आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप कन्नड़ भाषा के श्रेष्ठ साहित्यकार हिंदी जनता को परिचित हुए हैं, कन्नड़ संस्कृति हिंदी प्रदेश में प्रवेश कर चुकी है, और हिंदी के साहित्यकार कन्नड़ की जनता के निकट पहुँचे हैं। चूँकि इतिहास रचना काफी जटिल होता है, रचित और अनूदित सामग्री की कोई विस्तृत डायरेक्टरी उपलब्ध नहीं होती। विषय सूची, लेखक सूची, अनुवादक डायरेक्टरी के अभाव में इस दिशा में कोई प्रामाणिक आकलन नहीं कर पाते। ऐसी परिस्थिति में उचित मार्ग यही होता है कि दिशाओं को ध्यान में रखकर अनुवाद की सीमाओं को पहचानने की कोशिश की जाए। उन्हें हम प्रमुख रूप से स्वाधीनता आंदोलन के समय अनूदित साहित्य; स्वतंत्र भारत में अनूदित सृजनात्मक एवं सृजनेतर साहित्य कहकर दो स्थूल खंडों में विभक्त कर सकते हैं।

स्वाधीनता आंदोलन के समय अनूदित साहित्य : स्वाधीन भारत अथवा 1947 के अनंतर हुए अनुवाद प्रमुख रूप से स्वैच्छिक, स्वैच्छिक सेवा संस्थाओं द्वारा, सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा किए गए अनुवाद हैं। स्वाधीनता आंदोलन के समय सृजनेतर साहित्य में विशेष रूप से गांधीवादी साहित्य कन्नड़ में लाया गया है। गांधी जी की आत्मकथा, गांधी विचार, उनका महिला और समाज सुधार एवं ग्रामोद्धार से संबंधित संपूर्ण साहित्य कन्नड़ में आ चुका है। उस समय के इन अनुवादों में से अधिकांश हिंदी से कन्नड़ में लाया गया साहित्य है। यह देश-सेवकों द्वारा रचित साहित्य था। अर्थात् किसी के मन में अनुवाद की कोई व्यावसायिक भावना नहीं थी। वे लोगों से गांधी जी की बातचीत करवाना चाहते थे। इसलिए कन्नड़ में गांधी विचार गांधी जी

की बोलती वाणी में वे ले आए थे। जहाँ समर्पण रहता है, वहाँ पर तादात्म्य होता है। हठयोगी जिस तरह कुंडलिनी को सहस्रार दल कमल से मिलाकर अनहद नाद का श्रवण करता है, उसी तरह यहाँ की भाषा निर्मित हुई थी। ती. ता. शर्मा, बेटगेरि कृष्ण शर्मा, निट्टूर श्रीनिवास राव, तिरुमले राजम्मा, यशोधरा दासप्पा आदि कई देश-सेवकों ने गांधी साहित्य को कन्नड़ में लाकर कन्नड़ भाषा को समृद्ध बनाया। व्यावसायिक उद्देश्य नहीं होने से दूर-दूर तक यह साहित्य अनुवाद नहीं लगता।

इस तरह के अनुवाद उस समय के बाद बहुत ही कम देखने में आते हैं। इसे देखकर यूजीन ए. नीडा का एक संदर्भ स्मरण हो आता है। वे कहते हैं कि एक विमानपत्तन अधिकारी ने उनसे कहा था कि अनुवाद सिद्धांतों को रटकर हमारे कोई अनुवाद इसलिए नहीं हो सकते कि संवाद को तीव्र बनाना ही हमारा उद्देश्य होता है, उसमें थोड़ी-सी भी ढिलाई बरतने से सैकड़ों लोगों की जान आफत में फँस जाती है। नीडा कहते हैं, ''यह निष्ठा हमारे धार्मिक साहित्य के अनुवादकों में (अथवा अन्य अनुवादकों में) क्यों नहीं आ पाती?'' हिंदी प्रचार को गांधीवाद से अलग करके पहचानना ठीक नहीं होगा। हिंदी-भाषी और हिंदीतर भाषी प्रदेशों के साथ यह बात सामान्य रूप से लागू होती है क्योंकि हिंदी के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता और एकता जुड़कर आती है। इस तरह कर्नाटक प्रांत में हिंदी प्रचार आंदोलन के साथ अनुवाद के जरिए हिंदी साहित्य को कन्नड़ में लाना हुआ है। उस समय हिंदी प्रचार के क्षेत्र में हिंदी सेवी संस्थाओं का, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का विशेष योगदान रहा, जिससे 1940 के दशक में कुछ कन्नड़-हिंदी अनुवाद हुए। कु. वें. पु. की कहानियाँ, श्रीनिवास-मास्ति वेंकटेश अय्यंगार की कहानियाँ सरल हिंदी में अनूदित हुईं।

इसी अवधि में भारतीयरमणाचार ने प्रेमचंद के साहित्य का, विशेष रूप से उनके उपन्यासों का, कन्नड़ में अनुवाद किया था। उन दिनों कन्नड़ साहित्य में भी नई विधाओं का विकास हो रहा था, जिससे कन्नड़ के संप्रेषण में नई संवाद शैली भी निर्मित हो रही थी। तभी शिक्षा का प्रसार भी ज्यादा होने लगा था और ये अनुवाद पठनीय बने थे। अब उनका संदर्भ भी अनुपलब्ध है। कन्नड़-हिंदी संबंधों को पिरोने में गुरुनाथ जोशी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने भावात्मक एकता को मजबूती देने के लिए कई मौलिक ग्रंथ भी रचे। एक श्रेष्ठ अनुवादक की भूमिका अदा कर कन्नड़-हिंदी ग्रंथों द्वारा आदान-प्रदान के कार्य किए। मास्ति को हिंदी जनता से परिचित कराने वाले वह पहले सर्जक थे। साहित्य अकादमी के लिए भी उन्होंने अनेक कार्य किए। अ.न. कृष्णराव एक समय कन्नड़ जनता के बीच गुलशन नंदा की तरह पढ़े जाते थे। मगर उनके प्रेम कथाओं का स्वरूप भी भिन्न था और उन्होंने अपने जीवनकाल में लेखनी से कई

तरह के प्रयोग किए थे। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की थी। रचनाओं में उन्होंने कलाकार के जीवन पर उपन्यास रचे थे, संगीत के रागों पर केंद्रित कर उपन्यास रचे थे। उनके उपन्यास 'संध्या राग' का अनुवाद 1956 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से और ऐतिहासिक उपन्यास 'कित्तूर की रानी' का अनुवाद सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। ये दोनों अनुवाद सिद्ध गोपाल काव्यतीर्थ ने किए थे। सस्ता साहित्य मंडल ने तो अनुवादक का नाम तक नहीं छापा है। प्रकाशकीय का अंतिम वाक्य मात्र यह बात बताता है।

अनुवाद की भाषा कैसी होनी चाहिए? इस बात को लेकर एक अनुवाद समीक्षक कहते हैं, अनजाने ही विदेशी शब्द और वाक्य रचना लक्ष्य भाषा में प्रविष्ट हो जाते हैं। 'कित्तूर की रानी' अनुवाद में प्रयुक्त एक वाक्य – ''राजा की अंत्येष्टि समाप्त होते ही थैकरे साहब के प्रतिनिधि बनकर आए हुए धारवाड़ ने सिविल सर्जन को लेकर मल्लप्पशेट्टी आए।'' इस वाक्य में प्रयुक्त कुछ शब्द और प्रत्ययों के प्रयोग से (जैसे 'अंत्येष्टि के समाप्त होने', 'बनकर आए हुए' आदि) में 'समाप्त' शब्द के प्रयोग के बिना भी संप्रेषण हो सकता था। यह कन्नड़ के 'कर्मांतर मुगिसिकोंडु' का शाब्दिक अनुवाद है। इसी तरह उक्त वाक्यांश में 'हुए' आदि का प्रयोग स्रोत भाषा की वाक्य रचना की छाया को दर्शाते हैं। अगला एक वाक्य ''आपके इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देने की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण काम कित्तूर के प्रधान दीवान को है।'' मूल कन्नड़ उपन्यास में नहीं है। अनूदित रचना की एकल समीक्षा में तुलनात्मक विश्लेषण करना कठिन है। सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि यहाँ पर स्पष्ट संप्रेषण नहीं हो पाता।

अनुवाद से दो भाषाएँ भी पास आती हैं, संस्कृति से भी परिचित होते हैं। 'रानी' एक सार्वभाषिक शब्द है, मगर उच्चारण में ध्वन्यंतर आता ही है। कन्नड़ में जहाँ 'णी' है, हिंदी में 'नी' अंतरित होता है। हिंदी में 'णी' ध्वनि के होते हुए भी हिंदी ध्वनि से समन्वय साधने के लिए ही उसका प्रयोग हुआ है। अन्य नामवाची शब्द जैसे 'कित्तूर', 'चेन्नमा', 'गुरु सिदप्पा' ('अप्पा' हिंदी के 'जी' का समानवाचक है, मगर कन्नड़ की ध्वनि को बचाकर उसके साथ 'जी' जोड़ा गया है।) इसी तरह 'मल्लप्पा शेट्टी' शुद्ध कन्नड़ नाम है। शेट्टी का समानवाची 'सेठी' या 'सेठ' भी लेने में कोई हर्ज नहीं। अनुवादक यदि वह प्रयोग अपनाते तो प्रायः कन्नड़ ध्वनियों का वहाँ ह्रास होता। अनुवाद द्वारा होने वाले ध्वनि समन्वय से हिंदी भाषा तब वंचित रह जाती। इस तरह अनुवादक ने कन्नड़ ध्वनियों की अस्मिता की रक्षा की है।

'संध्यारागा' में संगीत के एक कलाकार का जीवन चित्रण है। अनुवादक उस कलाकार की जीवनी का परिचय देने तक यदि अपने को सीमित करता तो प्रायः उस अनुवाद

का कोई विशेष प्रयोजन नहीं रह जाता। वह काम स्वतंत्र लेखन से भी किया जा सकता है। कन्नड़-हिंदी को बुने बिना अनुवाद की क्या सार्थकता रहेगी? 'मीनाक्षम्मा', 'वेंकटेश' जैसे नामवाची शब्दों का यहाँ पर लिप्यंतरण हुआ है। इस प्रकार के लिप्यंतरण से एक सामाजिक भाषा का संचार होता है। हिंदी संस्कृति के सामान्य नाम से इन नामों के उच्चारण में अंतर है।

इसी संदर्भ पर त. रा. सु. के 'हंसगीत' की विषय-वस्तु का धरातल भी एक जैसा ही है। अर्चना प्रकाशन, बैंगलूर से प्रकाशित इस अनुवाद में प्रताप सुधाकर ने भी इस प्रकार की सामाजिक शब्दावली की इसी तरह रक्षा की है। वीरभद्रप्पा, उत्सवाम्बा, गोपालाचार्य, चंद्रशेखरय्या, श्रीनिवास अय्यंगार आदि इसमें प्रयुक्त शब्दों में से स्त्रीवाचक शब्दों के साथ लगे 'अम्मा' और 'अंबा' पर ध्यान देने से द्वितीय प्रयोग में कर्नाटक की सामाजिक नामवाची शब्दावली पर संस्कृत संस्कृति का गहरा प्रभाव प्रकट होता है और उसी से तद्भव में 'अम्मा' शब्द प्रयुक्त होता है। वैसे भी पूरा दक्षिण भारत भारतीय दर्शन के सिद्धांताचार्यों की भूमि है। उन विभिन्न सिद्धांतों से फलती-फूलती संस्कृति का इन दो उपन्यासों में प्रयुक्त सामाजिक शब्दावली के अध्ययन से पता चलता है। जैसे 'वीरभद्रप्पा' में 'वीरभद्र' शिवजी के लिए उद्देशित नाम है। मगर यहाँ के ब्राह्मण यह नाम नहीं रखते। 12वीं सदी में संपन्न सामाजिक सुधारवादी आंदोलन के फलस्वरूप बसवेश्वर के अनुयायियों ने जिस वीरशैव धर्म को अपनाया, वे लोग ही यह नाम रखते हैं। इसी तरह गोपालाचार्य में प्रयुक्त 'आचार्य' शब्द वैष्णवों में से मध्वमत के द्वैत सिद्धांत के अनुयायियों के साथ लगने वाला उपनाम है। इसी तरह चंद्रशेखरय्या का 'अय्या' स्मार्त ब्राह्मण, आचार्य शंकर के अनुयायियों का और अय्यंगार रामानुजाचार्य से प्रतिपादित श्रीवैष्णव सिद्धांत के अनुयायियों के साथ जुड़ा हुआ शब्द है। ये उपनाम भी, आदरसूचक 'जी' के पर्यायवाची हैं। कभी-कभी वीरभद्र के साथ भी 'अय्या' लगता है, वह साधारणतया प्रदेश सूचक सामाजिक प्रत्यय होता है। कर्नाटक के चित्रदुर्ग, दावणगेरे आदि मैसूर संस्थान के प्रदेश के निवासियों के साथ भी यह 'अय्या' लगता है। इस तरह इस अनुवाद के कारण इतनी सारी जानकारियों के साथ हिंदी प्रदेश का पाठक जुड़ता है।

अभी पिछले वर्षों में लिखित और अनूदित एक और रचना कन्नड़ के मुसलमान लेखक बोळुवार मोहम्मद कुञ् का भी उल्लेख किया जा सकता है। जैसा कि उनके नाम से ही पता चलता है कि केरल और कर्नाटक के बीच आयातित एक संयुक्त संस्कृति के बीज उसमें विद्यमान हैं। भारतीय अनुवाद परिषद के 'अनूदित भारतीय कहानियाँ' संग्रह (2003) के लिए प्रो. बी. वै. ललितांबा द्वारा हिंदी में अनूदित इस कहानी में कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ जिले की संस्कृति झलकती है। संस्कृति एक विस्तृत सार्थक शब्द है।

इसमें कई संस्कृतियों का समन्वय भी दिखाई देता है। विभिन्न मत-मतांतरों को साथ-साथ जीते समाज को देखने के अवसर मिलते हैं, इन सबके बावजूद मनुष्य के विश्वास से सिंचित परतें दिखाई देती हैं, अनुभूत होती हैं। 'कुञ्' की कहानी 'ओंदु तुंडु गोड़े – दीवार का एक टुकड़ा' का पात्र 'पातुम्मा' (अर्थात् फातिमा) कन्नड़ समाज का इतना सुंदर ध्वन्यंकित शब्द है कि वह जाति-धर्म के भेदभाव से दूर होकर दक्षिण कन्नड़ जिले के नामवाची शब्द को बताता है और इस ध्वनि में वह जाति-धर्म की सीमाओं के पार, उस समाज में स्थित समरसता को ध्वनित करता है। तुलनात्मकता और वैरुध्य दोनों बातें इसमें हैं। इस कहानी में वर्णित मनोसामाजिक चित्र भारतीय समाज की मूलभूत एकात्मकता की भावना अर्थात् सभी के साथ एक विश्वास के साथ जीने और उस विश्वास को जिंदा रखने की आंतरिक तड़पन को दर्शाती है और अनुवाद के अनुकूल ऐसी सामग्री के चयन पर जोर देती है। कहानी की प्रमुख पात्र पातुम्मा टाउन के सोनी शेट्टी को अपना अभिभावक या पिता के सदृश कहती है, कोई सामान्य-सी बात नहीं, क्योंकि कहानी के आरंभ से अंत तक वह उसी विश्वास को जीती है। उसकी सहायता करने के लिए उसके साथ उसी का जातिबंधु एक मुसलमान लड़का है। लेखक उस लड़के के व्यवहार में कोई खोट नहीं दिखाते, मगर विश्वास और अविश्वास की रेखाओं में पातुम्मा का अविश्वास उस लड़के पर टिकता है और विश्वास का आधार शेट्टी और उनकी अगली पीढ़ी में निरंतर जिंदा होता है। इस तरह की रचनाएँ अनुवादनीय होती हैं।

कर्नाटक राज्य काफी ज्यादा फैला हुआ है। एक तरफ मुंबई-कर्नाटक की सीमा है, वहाँ की भाषा और समाज जीवन पर मराठी का प्रभाव पड़ा है। गुलबर्ग-बीदर जिले हैदराबाद-कर्नाटक प्रदेश कहलाते हैं, उनकी भाषा पर निजाम संस्कृति का असर है, इसलिए उर्दू की गंध उस कन्नड़ पर देखने में आती है। उत्तर कन्नड़ जिले पर कोंकणी की छाया है, दक्षिण कन्नड़ जिले में शुद्ध कन्नड़ शैली और तुळु का मिश्रण कहीं-कहीं देखने में आता है। फिर मैसूर प्रदेश का कन्नड़। बैंगलूर कन्नड़ पर मिश्रण, मैसूर पर आस्थनिक साहित्य-कला और संगीत की सुकोमलता है। इसकी छाया रचनाओं में प्रतिफलित होती है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाजे गए साहित्यकार शिवराज कारंत ने अपने जीवन को निरंतर सृजनात्मक बनाकर रखा। उसी जीवन को उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रतिफलित किया। उनकी अनेकानेक श्रेष्ठ रचनाएँ हिंदी में आ चुकी हैं। भारतीय ज्ञानपीठ ने उनकी *'मूकज्जिय कनसुगळु'* का *'मूकज्जी'* नाम से, *'मरळि मण्णिगे'* का *'मिट्टी में लौटना'* के नाम से अनुवाद प्रकाशित किए हैं। उनके 'बेट्टद जीव' का बी.आर. नारायण ने 'पहाड़ी जीव' (1981) शीर्षक से अनुवाद किया है। 'पहाड़ी जीव' एक आँचलिक उपन्यास है। उसमें कर्नाटक के पहाड़ी प्रदेश में अपनी संस्कृति के साथ जीने वाली पुरानी पीढ़ी

और उसके तथा नई पीढ़ी के बीच आने वाले विश्वासों के टकराव की स्थिति का वर्णन है। इसमें वर्णन तक सीमित न होकर पहाड़ की तरह अपनी आस्था के साथ अडिग रहने वाली पुरानी पीढ़ी को भी दर्शाया है।

आस्था और विश्वास ये दो बहुत बड़ी चीजें होती हैं, जो मनुष्य जीवन को हिलाकर रख देती हैं। 'चोम का ढोल' कारंत का एक ऐसा यथार्थवादी, आस्था से टकराव में, परिस्थितियों के झंझावात में तड़पकर उसी में मिटने वाले हरिजन चोम की कहानी है। ईसाई बनाने के लिए उन पर डाला जाने वाले जोर, बिटिया जिस पर उसका गहरा विश्वास है, उस विश्वास का नाश, बड़े बेटे की असमय मृत्यु, दूसरे बेटे का ईसाई बन जाना और इन सबके बावजूद उसकी एकमात्र ख्वाहिश कि उसे अपनी जमीन चाहिए – इन सबके मिटने पर चोम आग के आगे अपना जातीय ढोल बजा-बजाकर उसकी विकृत सीमा तक बजाकर खत्म हो जाता है। यहाँ प्रयुक्त 'चोम' शब्द दलित समूह का जातिवाचक शब्द है। उसमें चाय बागान का वारसदार 'धणी' जो हिंदी में 'जिंदा' है। दक्षिण कन्नड़ में बंधुआ मजदूरों की परंपरा में प्रयुक्त भाषिक सुगंध को अनुवाद में लाने की कोशिश की गई है। 'दुड़ि' डमरू जैसा एक वाद्य है। यह भी जातीय वाद्य है। उसके लिए अनुवाद में 'ढोल' शब्द रखा गया है। 'डमरू' भी लिख सकते थे। किंतु उससे शिवजी का साम्य निर्मित होता है। शिवराम कारंत की ऐसी रचनाएँ आकस्मिक रूप से मात्र दक्षिण कन्नड़ जिले की न होकर पूरे भारतीय इतिहास का चित्र दर्शाती हैं। हर सामाजिक व्यक्ति को आत्म-परीक्षण के लिए आह्वान देती हैं। डॉ. हिरण्मय ने यह अनुवाद हिंदी जनता को 1960 के दशक में सौंपा था।

कन्नड़-हिंदी के बीच दोनों भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाएँ आ चुकी हैं। मगर यहाँ पर कुछ का ही उल्लेख हैं। स्वेच्छा से कई हिंदी सेवियों ने अनुवाद किए हैं। उनमें से सत्रहवीं सदी की कन्नड़ कवयित्री संचि होन्नम्मा विरचित 'हरिबदेय धर्मा' का एम. देवगौड़ा ने 1971 में प्रसाद पुस्तक मंदिर, मैसूर के लिए 'सती धर्म' के शीर्षक से अनुवाद जैसी कुछ रचनाओं का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। पारंपरिक विचारों से परिपूर्ण होकर भी महिला की रचनात्मकता को उस पुराने युग में प्रतिबिंबित करने वाली संचि होन्नम्मा का कन्नड़ साहित्य में महत्व है। इस रचना में कन्नड़ भाषा के छंद 'सांगत्य' का प्रयोग हुआ है। अनुवाद में भी उस छंद की रक्षा हुई है, यह इसकी विशेषता है। जैसे –

इतर चिंता छोड़ एकाग्र हो आत्म
पति पद-भक्त में लीन।
सतियाँ चावयुक्त आसीसें तो अनुग्रह,
खतियुत बोलें तो शाप।।

यति वानप्रस्थ-व्रती जो करते होंगे।
अति घोर तप आचरण को।
सतियों के धर्म न वे, गीष्पति
अगस्त्य प्रति यों बोला।।

वैचारिक दृष्टि से आज के समाज में इस रचना का महत्व नहीं है। किंतु उस छंद के अनावरण की दृष्टि से इस अनुवाद का महत्व है। कविता का अनुवाद बहुत कठिन कार्य होता है। कविता को कविता के मूल छंद में लाने के आग्रह से अनुवादक सीमाओं में बंध जाता है। कला सौंदर्य में भी कुंठा आती है। इसीलिए प्रायः कई बार पद्य को गद्यानुवाद द्वारा भी संप्रेषित करने की कोशिश की जाती है। 1962 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने इसी तरह एक प्रयास किया था। समिति ने 1961 में अपनी रजत जयंती के 25 वर्ष पूरे किए थे। उस अवसर पर 'कवि श्रीमाला' शीर्षक से प्रकाशित ग्रंथ में कन्नड़ कवि, ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाजे गए कवि कुवेम्पु की कुछ रचनाएँ भी हैं। उनमें कुछ कविताओं का गद्यानुवाद प्रस्तुत किया था। इस संकलन में एक तरफ नागरी में मूल रचना दी गई है, उसके सामने उसका हिंदी गद्यानुवाद दिया गया है। नमूने के लिएः

धनिकर मनेगळु ओंदेड़े निंतिवे,
बड़वर गुडिसिलु ओंदेड़े निंतिवे।
ज्योतिय मणिदीपगळल्लि;
कत्तलु कग्गत्तलु इल्लि!
हाडिन नुण्दनियत्त
गोळिनल नीळदयित्त।
कूळनु हेम्मेगे बिसुडुवरिल्लि,
होट्टेगे इल्लदे कोरगुवरिल्लि!
आ कडे उद्यान,
ई कडे श्मशान!

गद्यानुवाद इस प्रकार है :

''धनिकों के घर एक ओर खड़े हैं, तो दूसरी ओर हैं दरिद्रों की कुटीरों की पंक्ति। उधर ज्योति के रत्नदीप जगमगा रहे हैं, इधर अंधकार ही अंधकार है। उधर से मधुर संगीत की तान सुनाई पड़ रही है तो इधर हाहाकार मचा है, कराह-क्रंदन सुनाई दे रहे हैं। इधर धनवान धनोन्मत्त होकर अन्न को फेंक रहे हैं, उधर निर्धन दाने-दाने के लिए लालायित हैं। उस ओर उद्यान है और इस ओर श्मशान है।''

हालाँकि इस तरह के अनुवादों में मूल छंद की लय-गति का आस्वाद लेना संभव नहीं हो पाता, लेकिन कविता द्वारा बिंबित लेखकीय उद्‌गारों की तीव्रता और उसकी वैचारिक महत्ता से पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। साथ ही लक्ष्य भाषा के अन्य कवियों के सामाजिक विचारों की तुलनात्मकता के आसार भी उससे विनिर्मित होते हैं। इस रचना को पढ़कर नवीन जी की 'जूठे पत्ते' वाली रचना के 'लपक चाटकर जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने नर को उस दिन सोचा', 'क्यों न लगा दूँ आग आज दुनिया भर को' का स्मरण हो आता है। दोनों समानधर्मा – एक ही समय के कवि थे। सामयिक चिंतन भाषा भेद की दीवार को ढहा देता है।

कन्नड़ के नामी स्थापित साहित्यकारों में से आद्य रंगाचार्य 'श्रीरंग' के नाम से चिर-परिचित केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी के भूतपूर्व अध्यक्ष के कई नाटक हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर मंचित हो चुके हैं। उनके 'सुनो जनमेजय', 'जरासंध' आदि नाटकों से हिंदी रंगमंच ने एक समय आंदोलन शुरू किया था। उनके उपन्यास 'प्रकृति पुरुष' में बदलते हुए समाज के साथ समाज में आने वाले बदलाव के बावजूद प्रकृति-पुरुष और नर-नारी के बीच संबंधों में कितना बदलाव आता है? इस प्रश्न के बीच तिर्यक घूमता है कथानक, सवर्ण-हरिजन संबंध, सामाजिक परिवर्तन के साथ उनमें परिवर्तन। लेकिन परिस्थितिवश मानव-स्वभाव में वर्गगत बदलाव – आज की परिस्थितियों में उसकी तर्कसंगत प्रासंगिकता इस उपन्यास की विशेषता है। सभी पात्रों का मनोविश्लेषण और विभिन्न परिस्थितियों में उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया का वस्तुपरक जीवंत विश्लेषण इस उपन्यास को क्लासिक की श्रेणी में रखता है। इसलिए यह अनूदित है। अनुवादक बी. आर. नारायण ने आदान-प्रदान कार्य को अपने जीवनकाल में कन्नड़ की श्रेष्ठ मानी जाने वाली इस प्रकार की ही रचनाओं का चयन करते हुए हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने का निरंतर प्रयास किया है और हिंदी प्रदेश में ही जीवन-पर्यंत रहकर अनुवाद कार्य करने से भी उनकी भाषा में कसाव है। यह मूल रचना का-सा आस्वाद कराती है। 'तुम तो पागल हो इतना भी नहीं समझते? तुम्हें खाने-पीने को देकर घर से दूर रखता हूँ और तुम्हारे घर जाता हूँ।' हालाँकि 'को' के इस प्रयोग में व्यावहारिक भाषा का पुट है। बी.आर. नारायण के तीस हजार से भी अधिक पृष्ठों के अनुवाद कार्य में कुवेंपु का 'मलेगळल्लि मदुमगळु' का 'पहाड़ी कन्या' शीर्षक से अनुवाद भी शामिल है। 'कन्या' शब्द कन्नड़ के सामाजिक संदर्भ में विशेष रूप से 'दुल्हन' अर्थ बताता है, जबकि हिंदी में 'कन्या' संस्कृत भाषा की छाया में 'अविवाहित बालिका' होती है। अनुवादक ने 'कन्या' शब्द का चयन किया है। (अनुवाद कार्य पूरा होने पर एक पुस्तक मंच या अनुवाद मंच का निर्माण कर फिल्म के प्रीमियर शो की तरह अभिप्रायों का

स्वागत करना भी एक अच्छी पहल हो सकती है, जिससे हम अनुवादकों को सकारात्मक सुझाव मिल सकते हैं।) 'कानूरु सुब्बम्मा हेग्गडिती' एस.एल. भैरप्पा की 'गोधूलि' आदि कई रचनाएँ बी.आर. नारायण के अनुवादों में सम्मिलित हैं।

एस.एल. भैरप्पा के उपन्यासों के विद्वत्जगत में भी भूरि-भूरि प्रशंसा होती है। परिवार में वृद्ध पीढ़ी से लेकर आज की पीढ़ी तक की महिलाएँ भी उनके उपन्यास बड़े शौक से पढ़ती हैं। उनके उपन्यास 'गोधूलि' के बारे में कहा गया है कि कर्नाटक के ग्रामीण अंचल के माध्यम से भैरप्पा ने भारतीय अस्मिता की पहचान को सांस्कारिक गौरव के साथ उभारा है। उन्हें अपने 'दाटु-उल्लंघन' उपन्यास पर 1975 का केंद्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिल चुका है। 'वंश वृक्ष' से उनकी कीर्ति भारत भर में फैली थी। उसके फिल्मीकृत होने पर फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल प्राप्त हुआ था। उनका 'पर्व' महाभारत पर आधारित एक महत्वपूर्ण शोध उपन्यास (नरेंद्र कोहली की 'दीक्षा' का स्मरण करें – वस्तु भिन्न 'व्यास पर्व', 'महाभारती' आदि के समान) है। भैरप्पा के सारे उपन्यास हिंदी में आ चुके हैं। शब्दकार ने ही विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान योजना के अंतर्गत शीर्षस्थ उपन्यासों को प्रकाशित किया है। उनमें से दो-तीन (जैसे 'गोधूलि' बी.आर. नारायण, 'छोर' भालचंद्र जयशेट्टी) को छोड़कर अन्य सभी उपन्यासों के अनुवाद डॉ. वी.बी. पुत्रन ने ही किए हैं। पुत्रन एक प्रतिष्ठित अनुवादक के रूप में जाने जाते हैं। उनके अनुवादों की प्रस्तुति, भाषा-शैली में कसाव आदि मौलिक सर्जन से लगते हैं। उसी तरह कई हजारों की संख्या में उल्लेखनीय अनुवाद संपन्न हुए हैं।

संस्थागत अनुवाद भी हिंदी में खूब हुए हैं। उनमें से सरकारी संस्थाओं में से नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली तथा केंद्रीय साहित्य अकादमी उल्लेखनीय हैं। इन दोनों संस्थाओं के आश्रय में हर साल भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाओं का चयन होता है। बुक ट्रस्ट अनुवादकों से भारत की प्रादेशिक भाषाओं में हिंदी को केंद्र में रखकर अनुवाद कराती है। बुक ट्रस्ट ने कन्नड़ उपन्यासकार राव बहादुर रचित 'ग्रामायण' उपन्यास का हिंदी अनुवाद एच.वी. रामचंद्र राव से 70 के दशक में करवाया था और बाद में केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने उन्हें इस श्रेष्ठ अनुवाद पर पुरस्कृत किया था। इसी तरह, श्रीमती एच. एस. पार्वती से 80 के दशक में फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल', श्रीलाल शुक्ल रचित 'राग दरबारी' का 'दरबारी राग' शीर्षक से कन्नड़ में अनुवाद करवाया था। साहित्य अकादमी हर वर्ष सभी भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाओं को सम्मानित करती है और उन रचनाओं के अनुवाद करवाती है। सम्मान के बिना भी श्रेष्ठ रचनाएँ अकादमी से अनूदित होती हैं। शंकर मोकाशी पुणेकर की रचना 'गंगव्वा गंगामाई' पुरस्कृत भी हुई और 80 के दशक में अनूदित भी हुई। अकादमी की प्रकाशन सूची में अनूदित रचनाओं

का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। कर्नाटक साहित्य अकादमी, बैंगलूर ने भी 'वचन' शीर्षक से 90 के दशक में कर्नाटक के वीरशैव संतों की रचनाओं का हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया है। केंद्रीय साहित्य अकादमी की द्वैभाषिक पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' में, केंद्रीय हिंदी निदेशालय की द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' में बहुत पहले से कन्नड़ में रची रचनाओं के अनुवाद छपते आ रहे हैं। स्वैच्छिक हिंदी सेवी संस्थाओं में से कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति ने 'त्रिवेणी-कन्नड़ की महिला उपन्यासकार' की रचनाओं का रामचंद्रस्वामी से 'अपजय', 'बेक्किन कण्णु' आदि का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत करवाया है।

''कन्नड़ नाटक और रंगमंच' ग्रंथ प्रो. नागप्पा ने मैसूर हिंदी प्रचार परिषद द्वारा की गई पहल पर हिंदी अकादमी के लिए अनुवाद किया है, जिस पर उन्हें वर्ष 2005 में केंद्रीय हिंदी निदेशालय का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

भारतीय ज्ञानपीठ ने कन्नड़ के ज्यादा साहित्य का अनुवाद प्रकाशित नहीं किया है। पूर्व में किए गए उल्लेख छोड़कर अन्य अनुवादों में से ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित सभी कन्नड़ लेखकों की रचनाओं के हिंदी अनुवाद करवाए हैं। एच.वी. नागराजराव के उपन्यास 'पट्टमहिषी शांतला देवी' पर मूर्तिदेवी पुरस्कार देकर हिंदी में अनुवाद करवाया है।

भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता ने 70 और 80 के दशक में तथा 90 के दशक में भी हिंदी को भारतीय साहित्य से समृद्ध करने का महाउद्देश्य लेकर कई प्रकार के अनुवाद प्रयोग किए, और उन दिनों 'संदर्भ भारती' नामक मासिक पत्रिका भी (आजकल 'वागर्थ' शीर्षक से प्रकाशित होती है) संचालित की, जिसमें कन्नड़ की भी श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवाद संचित हैं। 'शतदल' 1980 में कन्नड़ के दस श्रेष्ठ कवियों की कविताएँ भी सम्मिलित हैं; 'वचनोद्यान', डॉ. सिद्दय्य पुराणिक 'काव्यानंद' द्वारा रचित 540 वचनों ('वचन' कन्नड़ की एक विशिष्ट काव्य विधा है) का; भारतीय उपन्यास कथासार भाग 2 में कन्नड़ की दस श्रेष्ठ उपन्यासों का दस-दस पन्नों में कथा-सार; 'भारतीय कहानियाँ' से कन्नड़ की दस श्रेष्ठ कहानियाँ; 'श्रेष्ठ बाल कहानियाँ' में दस कन्नड़ की बाल कहानियाँ; 'श्रेष्ठ ललित निबंध' में कन्नड़ के आठ श्रेष्ठ निबंध भी अनूदित होकर संकलित हैं। उक्त पत्रिका के विशेषांकों में उस-उस वर्ष की श्रेष्ठ रचनाएँ चयनित होकर संकलित हैं। ये सभी अनुवाद प्रो. बी.वै. ललितांबा ने किए हैं। कर्नाटक साहित्य अकादमी ने 1987 से 'अनिकेतन' नामक द्वैमासिक पत्रिका की शुरुआत की थी। उसमें हिंदी की अनेकानेक रचनाएँ अनूदित होकर प्रकाशित हुई। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने भी कुछ कन्नड़ रचनाओं के हिंदी अनुवाद 'साहित्य भारती' में प्रकाशित किए हैं। इस प्रकार कन्नड़ हिंदी का आदान-प्रदान कार्य काफी फलवती है।

❑

मुशर्रफ़ आलम 'ज़ौकी' से साक्षात्कार
साक्षात्कारकर्ता : डॉ. अंजना बख्शी

''मैंने उस मंटो को जाना जिसे अब तक नहीं जाना गया''

प्रश्न : विभाजन पर आधारित कौन-कौन-सी उर्दू कहानियों का आपने अनुवाद किया है?

उत्तर : विभाजन हमेशा से मेरा महबूब विषय रहा है। इसलिए अनुवाद को लेकर भी इस ओर गंभीर रहा हूँ। मंटो ने शायद उर्दू में पंजाबी या हिंदी के किसी भी लेखक से ज्यादा विभाजन की त्रासदी व्यक्त की है। मंटो की रचनाओं का अनुवाद करना सहज नहीं था। अभी हाल में वाणी प्रकाशन से मेरी मंटो पर आठ किताबें प्रकाशित हुई हैं – 'मेरठ की कैंची', 'दो कौमें', 'रेरवाल का कुत्ता', 'एक प्रेम कहानी', 'शरीर और आत्मा', 'सन् 1919 की बात', 'मिस टीन वाला'; और 'गर्भ बीज'।
अब 'गर्भ बीज' को ही लीजिए। अनुवाद करते समय यह नाम हिंदी के लिहाज से ज्यादा सटीक लगा। मैंने इसी नाम को प्राथमिकता दी। इसके अतिरिक्त मैंने वाणी प्रकाशन के लिए ही 'विभाजन की कहानियाँ' का संपादन किया। साथ ही इंद्रप्रस्थ प्रकाशन के लिए दो भागों में 'सुर्ख बस्ती' के नाम से भी विभाजन पर आधारित कहानियों का संपादन किया।

प्रश्न : अनुवाद करते समय आप किन-किन बातों का ध्यान रखते हैं?

उत्तर : अनुवाद एक मुश्किल कार्य है। ऐसा कहा जाता है कि अच्छा अनुवाद अच्छी रचना के समान होता है। लेकिन मैं यह नहीं मानता। संभव है कुर्रतुल ऐन हैदर या प्रेमचंद जैसे लोग अनुवाद करें तो अनुवाद में अच्छी रचना का आभास मिले। लेकिन प्रायः ऐसा संभव नहीं है। क्या मीर या गालिब का अनुवाद हो सकता है? क्या आगा हश्र कश्मीरी की खूबसूरत नस्त्र, हिंदी में वैसी की वैसी ढाली जा सकती है? या परसाई और शरद जोशी के 'बोलते हास्य' उर्दू में ठीक

वैसे ही अनूदित होकर पहुँच सकते हैं? इसका उत्तर है – नहीं। अनुवाद करते समय सबसे पहले ध्यान तो यही होता है कि अनुवाद उस भाषा के पाठकों तक ठीक वैसा ही पहुँचे जैसा कि लेखक ने अपनी भाषा में लिखा है। लेकिन सारी दिक्कतें यहीं से शुरू होती हैं। हर भाषा के अपने मुहावरे हैं, अपनी शैली और अपना लहजा है। उर्दू-हिंदी की बात करें तो दोनों भाषाएँ लिपि को छोड़कर समान कही जा सकती हैं। लेकिन यदि अनुवाद की बात आएगी तो फिर भाषाई मुहावरे अनुवाद पर हावी हो जाएँगे। प्रेमचंद दोनों भाषाओं के जानकार थे। लेकिन उनकी एक ही कहानी दोनों भाषाओं में पढ़ लीजिए। आपको दोनों भाषाओं का एक बड़ा अंतर मालूम हो जाएगा।

प्रश्न : जैसा कि आपने अभी कहा है, लिपि को छोड़कर उर्दू-हिंदी को समान कहा जा सकता है। इस आधार पर आप यह बताएँगे कि क्या आपने लिप्यंतरण की पद्धति अपनाई है या अनुवाद की?

उत्तर : साधारणतः मैं अनुवाद की प्रक्रिया अपनाता हूँ। लिप्यंतरण में दिक्कत यह है कि प्रत्येक पृष्ठ पर आपको मुश्किल शब्दों के अर्थ भी लिखने होंगे, जिससे पाठक बोझिल हो जाता है। इसलिए उर्दू-हिंदी-उर्दू अनुवाद में लिप्यंतरण की पद्धति की जगह अनुवाद की पद्धति को ही अपनाना चाहिए।

प्रश्न : क्या आपने इन कहानियों का अनुवाद करते हुए कुछ जोड़ा-तोड़ा भी है? यदि हाँ, तो क्या और कहाँ, कृपया बताएँ?

उत्तर : कुछ हिंदी कहानियों का अनुवाद करते हुए मुझे जोड़-तोड़ की कार्रवाई करनी पड़ी है। उर्दू की अपनी तहजीब और अपने मुहावरे हैं और हिंदी के अपने। कुछ कहानियाँ जो विशुद्ध रूप से आँचलिकता के दायरे में आती हैं, उनका अनुवाद आसान नहीं होता। जैसे फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' या राही मासूम का 'आधा गाँव।' हिंदी के अनेक लेखकों की कहानियों का अनुवाद करते समय जटिल स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। कमोबेश यही स्थितियाँ मंटो, इस्मत चुगतई और बेदी की कहानियों के हिंदी अनुवाद के समय भी होती है। इस्मत की चटखारेदार तहजीबी जुबान अनुवाद होते ही अपने रस से भटक जाती है। मंटो की कहानियाँ भी भाषा की मजबूत बुनियाद पर गढ़ी गई हैं। अगर आप एक होशियार अनुवादक नहीं हैं तो फिर अनुवाद करते समय भाषा का वह जादू गुम हो जाएगा, जिसे गुम नहीं होना चाहिए।

एक बार उर्दू अकादमी की पत्रिका 'ऐवाने उर्दू' के 'हिंदी कहानी' विशेषांक की जिम्मेदारी मुझे सौंपी गई। इसमें भगवान दास मोरवाल की एक कहानी थी। इस लंबी कहानी को मुझे छोटा करना पड़ा। मुझे कई जगह अहसास हुआ, शब्द

अधिक हैं और भावुकता का पुट भी भयानक हद तक फैलाव लिए हुए है। फिर इस कहानी को मैंने अपने हिसाब से और अपनी शैली में लिखना जरूरी समझा। इसी तरह 'उर्दू आजकल' के 'हिंदी कहानी' विशेषांक, जैनेंद्र और अज्ञेय पर विशेषांक की जिम्मेदारी मुझे दी गई। जैनेंद्र और अज्ञेय के साहित्य का अनुवाद आसान नहीं था। यहाँ भाव जरूरी थे। मैंने छोटे-छोटे नोट्स लिए। भावों को समझा और इस तरह अनुवाद की एक सामान्य प्रक्रिया अपनाई और इन रचनाओं को सहजता से उर्दू के 'कालिब' में ढाल दिया।

प्रश्न : मुहावरेदार भाषा के अनुवाद में आप कैसे तालमेल बैठाते हैं?

उत्तर : अलग-अलग भाषाओं के मुहावरे अलग-अलग होते हैं। इसलिए अनुवादक को दोनों भाषाओं का जानकार होना जरूरी होता है। सबसे पहले उस भाषाई इतिहास और उसके फलक की जाँच-पड़ताल करनी होती है और यह देखना होता है कि अनूदित भाषा में ये मुहावरे सही बैठेंगे या नहीं? मिसाल के लिए कभी आपको काजी अब्दुरस्सत्तार के तारीखी उपन्यास (दाराशिकोह, गालिब) अनुवाद के लिए दे दिए जाएँ। काजी साहब की बा-मुहावरा जुबान अनुवाद में आ ही नहीं सकती। लिप्यंतरण हो तब भी पढ़ने वालों के लिए मुश्किल। दरअसल अनुवादक के छक्के ऐसे ही जगहों पर छूटते हैं, जहाँ उसका सामना मुहावरेदार भाषा से होता है। यहाँ किसी भी तरह का तालमेल संभव नहीं क्योंकि किसी भी कीमत पर मूल भाषा की रवानगी और ताजगी अनुवाद में समा ही नहीं सकती।

प्रश्न : आपके विचार में, अनुवाद करते समय किन-किन स्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है?

उत्तर : अनुवाद करते समय भाषाई स्थिति से लेकर भौगोलिक-ऐतिहासिक आदि तमाम स्थितियों को सामने रखना पड़ता है। कभी-कभी इन सबके बावजूद अच्छा अनुवाद सामने नहीं आ पाता। अंग्रेजी से उर्दू अनुवादों की एक बड़ी दुनिया आजादी से पहले और अब हिंदुस्तान से पाकिस्तान तक है।

प्रश्न : अनुवाद करते समय कोई खास अनुभव यदि हुआ हो, तो हमें बताएँ?

उत्तर : विभाजन की कहानियों के अनुवाद में मुझे सबसे अधिक परेशानी मंटो की कहानियों का अनुवाद करते समय हुई। इसलिए मंटो पर अपने अनुभव का जिक्र अवश्य करना चाहूँगा। सबसे पहले मैंने उस मंटो को जाना, जिसे अब तक नहीं जाना गया था। मंटो इंसानी कमजोरियों से वाकिफ हैं। छोटी-सी उम्र में मर जाने के बावजूद जो दुनिया मंटो ने अपने मुशाहिदे से देखी थी, वह शायद कम लोगों ने देखी थी। इंसानी मनोविज्ञान की जो पकड़ मंटो में थी, शायद अब भी यह पकड़ बड़े-बड़े कथाकारों में नजर नहीं आएगी।

❑

वि.स. खांडेकर
अनु. : डॉ. शोभा एम. पवार

सुगंध

''अरे वाह! एकदम समाधि ही लगी हुई है।'' रेखा के ये शब्द जब कान पर पड़े तब जाकर शीला ने किताब से अपना ध्यान हटाया, पर पीछे मुड़कर नहीं देखा। गहरी नींद में सोए किसी बच्चे को जबर्दस्ती उठाने पर उसके हँसते मुख पर जिस प्रकार का चिड़चिड़ापन दिखाई देता है, शीला की मुद्रा भी ठीक वैसी हो गई थी। रेखा जल्दी से उसके आगे आकर खड़ी हो गई। फोटो निकालने वाला जिस प्रकार कैमरा अच्छी तरह टिकाकर रखता है, उसी प्रकार शीला पर अपनी नजर टिकाते हुए वह बोली, ''लगता है रंग में भंग हो गया है?''

शीला के चेहरे पर हल्की हास्य-रेखा छा गई।

''देखूँ तो सही जनाब किस उपन्यास को पढ़ रही थी।'' शीला ने किताब छुपा दी थी, जिससे रेखा को अधिक शंका हुई। शीला किसी भी तरह से किताब दिखाने के लिए तैयार नहीं हुई। रेखा एकदम रूआँसी-सी हो गई, जिसे देखकर जोर से हँसते हुए शीला ने वह किताब टेबल पर ला पटकी। अब रेखा का भी हँसते-हँसते बुरा हाल हो गया – काहे की किताब! वह तो पिछले जन्म का वह बैरी था... अलजेब्रा।

हँसते-हँसते रेखा की आँखें शीला को इस तरह देखने लगी जैसे किसी विचित्र प्राणी को देख रही हो। प्रैक्टिकल के झंझट से मुक्त होकर शीला तुरंत घंटा-भर के लिए बीजगणित हल करने बैठी हुई थी। कोई बड़ा इनाम भी लगा दे तो भी उससे यह अग्नि-परीक्षा होने वाली नहीं थी।

उपन्यास पढ़ते-पढ़ते ऊब जाने के कारण वह तालाब के पानी में कंकड़ डालती हुई उसमें बनने वाली गोल तरंगों को देखती हुई न जाने कितनी देर तक खड़ी थी।

उस बचकाने खेल में ही उसे एकदम से काँचन की याद आ गई। वह सोचती है – आजकल जब वह मुझसे मिलने आता तो उसके शब्द ही नहीं, बल्कि उसके स्मित हास्य भी मेरे मन में इसी प्रकार की मधुर तरंग क्यों पैदा करते हैं? बचपन से ही उससे घर का नाता रहा है। भैया के मित्र के रूप में वह मुझसे मिलने जरूर आता रहता। फिर आजकल मेरे मन में उसके प्रति ऐसा निराला आकर्षण क्यों होने लगा है? आजकल विलक्षण मोहक सुगंध से उसका मन मदहोश हो जाता, पर यह सुगंध कहाँ से आ रही है यह पता न चल पाता। दो महीने पहले लगी फिल्म में कांचन की भूमिका बहुत सुंदर थी। जब वह मुझसे मिलने आता है, तब उसे देखने के लिए विद्यार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ती। अपने मन को उसने इस तरह समझाने की कोशिश की, इसी उधेड़बुन में उसके हाथ से कंकड़ के बजाय मिट्टी का छोटा-सा ढेला पानी में गिरा। तरंगे तो उठीं पर पानी का मटमैला बनाकर ही। जल्दी-जल्दी वह अपने घर की ओर लौट आई। कांचन ने तय किया था कि आज 'भाग्यचक्र' फिल्म देखने के लिए जाएँगे, यह बात उसे पाँच बजे तक अच्छी तरह याद थी। इस रमणीय संध्या की कल्पना में प्रयोगशाला में युग के समान लगने वाला हर क्षण उसके लिए सुसह्य हो गया था। किंतु तालाब के किनारे पेड़ की छाया में खड़े होकर जल-तरंग का खेल खेलते-खेलते वह अपने मानस-सरोवर की तरंगों में ही लीन हो गई थी। उसने सोचा कि बाहर बैठक में कांचन और शीला गपशप करने बैठे होंगे, उसे देखते ही कांचन पूछेगा, ''कहो रेखा कहाँ भाग गई थी?'' और मैं उत्तर दूँगी, ''सिनेमा के लोगों को भाग जाने के अलावा और कुछ सूझता है क्या?'' दाहिने हाथ की उंगलियों में टोपी गोल-गोल घूमाते हुए कांचन पूछेगा, ''पर आज मैं आने वाला हूँ, यह पता था तुम्हें!'' तब मैं शीला की ओर देखकर कहूँगी – ''मैं नहीं थी इसलिए तुम्हें आसमान की ओर देखने तो नहीं बैठना पड़ा ना। और इस समय आकाश में एक भी चाँदनी दिखाई देगी क्या? जबकि तुम्हारे सामने तो अभी दो सुंदर शुक्रतारा चमक रहे हैं।'' किंतु... उजली चाँदनी की आशा में आँगन में आए और बाहर अँधेरा फैला हो ठीक यही स्थिति रेखा की हुई। कांचन का कहीं पता नहीं था! उसने सोचा शीला ऊपर के कमरे में पढ़ने बैठी होगी। पर वह जो पढ़ रही थी उसे देखते ही रेखा क्षण-भर के लिए सन्न रह गई। अलजेब्रा! आग से बचकर हवा में बह जाए या कि वहीं पड़ा रह जाए!

टेबल पर दाहिनी कुहनी टिकाकर वह बोली – ''धन्य हो तुम भई।''

शीला ने केवल भौहों को किंचित सिकोड़ा। ''शीला तुम्हें दिल नहीं है क्या?''

''जैसा उपन्यास के नायक-नायिकाओं का होता है, हाँ वैसा नहीं है।'' ऐसा नहीं था कि रेखा को यह बात बुरी न लगी हो, पर वह नासमझ बनते हुए बोली – ''इस

शुष्क विषय से तुम्हें थकान नहीं होती है?''

''किसान अगर कीचड़ से ऊब जाए तो चलेगा क्या?''

''तुम्हारे जैसे किसान होंगे तो नेताओं को यह घोषणा करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि ''चलो देहात''। झुंड के झुंड उधर ही दौड़ पड़ेंगे?'' रेखा द्वारा की जाने वाली उसके स्वभाव की अप्रत्यक्ष प्रशंसा शीला को अप्रिय लगी, ऐसा नहीं था। अच्छे गायक द्वारा गीत सुनकर व्यक्त किया आनंद ही गवैये को अधिक अच्छा लगता है। रूप संपन्न के द्वारा दूसरे के रूप की स्तुति करने से वह रसपूर्ण बन जाती है। पर ऐसे समय में शीला को आनंद होता तो भी उसके चेहरे पर कभी दिखाई नहीं देता था। इस समय उसने जम्हाई देकर रेखा की इस स्तुति को स्वीकार किया। अचानक चौंककर रेखा ने पूछा, ''कितना बजा है री?'' दीवार से उलटी टंगी बड़ी-सी घड़ी को शीला ने ठीक किया तो छह तो बज चुके थे, यह करते समय रेखा ने देखा कि शीला की कलाई पर घड़ी नहीं थी।

''तुम्हारा रिस्ट वॉच कहाँ गया?''

''दे दिया!''

''किसे?''

''कांचन को।''

रेखा की समझ में नहीं आया कि कांचन आया कब और शीला ने उसे अपनी घड़ी दी कब! कांचन ने मुझसे न मांग कर शीला की घड़ी ली, इस बात का उसे अधिक आश्चर्य हुआ। और कोई वक्त होता तो वह मुँह फुला कर बैठ जाती, किंतु जिज्ञासा आँख में पड़े धूल के कण के जैसी होती है। कुछ भी करो वह आदमी को चुप बैठने नहीं देती है। ''कांचन को घड़ी क्यों चाहिए थी?''

''उनकी नई फिल्म बन रही है ना? मेरी घड़ी उन्हें बहुत पसंद आ गई।''

''घड़ी पसंद आ गई या...''

शीला का चेहरा देखते ही रेखा को अधिक बोलने का साहस नहीं हुआ। ईर्ष्या की चुभन अनजाने ही उसके मन को बेचैन कर रही थी। ''मैं छह बजे तक न आ सका तो तुम दोनों खुद थियेटर पहुँच जाना'', यह बात उसने शीला को बताई – यह सुनते ही चुभन अधिक गहरी हो गई। शीला के आग्रह पर गाँव तक पैदल जाना तय हुआ। नदी के बीच रास्ते से जाने में कोई दिक्कत नहीं थी। चलते-चलते पगडंडी के किनारे एक छोटा-सा बंगला आया। वहाँ खिले हरसिंगार की मोहक सुगंध दूर तक फैली हुई थी। रेखा के मन में एकदम से यह इच्छा उत्पन्न हुई, ''बंगले में जाकर कुछ फूल चुन लाए।'' वह रुकी भी। किंतु शीला का साथ आने का कोई आसार नजर

नहीं आ रहा था। वह शीला से बोली, ''तुम्हें यह फूल पसंद नहीं है क्या?''

''रेखा तुम और मैं साल-भर से एक कमरे में रह रहे हैं। पर मैं मनुष्य हूँ इस बात का तुम्हें अब तक विश्वास नहीं हो पाया है।''

''हरसिंगार का फूल इतना नजदीक होते हुए भी मनुष्य चुप थोड़े बैठ सकता है?''

''क्यों नहीं बैठ सकता?''

''बिना फूल लिए?''

''सुगंध मिल जाने पर फूल की चाहत की भी हठ पकड़ने से काम नहीं चलता इस संसार में। फूल का क्या है, चार घंटे में सूख जाएँगे। इसलिए दूर से ही सुगंध की स्मृति लेकर जाना ठीक नहीं है क्या?''

फिल्म देखते समय रेखा का मन और अधिक बेचैन हो गया था। कांचन ने जिसमें काम किया था, वह फिल्म लगी हुई थी। इसलिए दोनों को लेकर वह बॉक्स में बैठा हुआ था। किंतु शीला बगल में, वह बीच में और कांचन दूसरी बाजू में, इस तरह बैठने की इच्छा रेखा की थी पर कुछ और ही घटित हो गया। कांचन खुद बीच में आकर बैठ गया। फिल्म चालू होने पर वह एकाध वाक्य बोलता तो शीला से ही। जैसे उसकी दाहिने ओर रेखा नाम की कोई मूर्ति बैठी हो। इंटरवल के समय, दिखाई गई कथा पर चर्चा होने लगी। अंधे सूरदास का वात्सल्य मर्मस्पर्शी था, इस बात पर सब एकमत हो गए। किंतु रेखा का मानना था कि स्त्री भूमिका में नायिका रूप कुमारी ही उत्कृष्ट थी क्योंकि नायक गोद लिया लड़का होने के बावजूद उससे वह प्रेम करने के कारण उसके साथ भाग जाती है। जबकि शीला को अंधे सूरदास का काम और उसके द्वारा घर में लाए हुए अनाथ बच्चे का पालन करने वाली 'कल्लू की माँ' अधिक पसंद आई। रूप कुमारी का त्याग भोग से थोड़े ऊँचे स्वरूप वाला है, जबकि 'कल्लू की माँ' का त्याग पूरी तरह उदात्त है, उसने जब यह कहा तब कांचन ने भी सहमति जताई। ''लगता है शीला की घड़ी की तरह उसके विचार भी तुम्हें पसंद आने लगे हैं।'' हँसते-हँसते व्यंग्य कसने का रेखा ने प्रयत्न किया, पर उसके स्वर में मन का क्रोध प्रकट हुए बिना रह नहीं सका।

अब तक रेखा को यह लगता था कि कांचन पर उसका अधिकार ज्यादा है। वैसे भी बचपन की दोस्ती बकुल के फूल की तरह होती है। उसकी सुगंध कभी खत्म नहीं होती। पिछले साल कांचन ने बी.ए. किया, उसी समय रेखा ने मैट्रिक में प्रवेश लिया। पर उस समय महाविद्यालय में दाखिला कराया जाए या शादी, इस बात पर घर में काफी चर्चा हुई थी। महत्वाकांक्षी कांचन इन रूढ़िगत परंपराओं को मानने के लिए तैयार नहीं था। कॉलेज के नाटक में की गई भूमिका को देखकर अच्छे से अच्छे

रसिकों ने उसकी पीठ थपथपाई थी। परिपाटी को छोड़कर उसने नए मार्ग पर चलने का निश्चय किया। फिल्मी दुनिया में शुरू के चार-पाँच साल संघर्ष में गए तो भी प्रसिद्धि, पैसा और समाज-सेवा आदि बातों की वहाँ कमी नहीं है, इस बात का उसे विश्वास था। रेखा के भैया से बोलते समय खुलकर हँसते हुए उसने जो बात कही, उसे वह आज तक भूली नहीं थी – ''दही मथने से बहुत हुआ तो मक्खन मिलता है पर समुद्र मंथन करने पर अमृत की प्राप्ति होती है।'' मजाकिया भैया बोला, ''यह सिनेमा की दुनिया है कांचन, अमृत से पहले तुम्हें अप्सरा ही दिखाई देगी।'' कांचन ने इसका जवाब देते हुए कहा, ''अमृत की इच्छा रखने वाले को अप्सरा और हलाहल दोनों पचाना आना चाहिए।''

देखा जाए तो कांचन और रेखा की शादी तय नहीं हुई थी परंतु घर वालों में बार-बार चर्चा होने के कारण लोगों ने वैसा मान लिया था। जिस प्रकार हवा में बहने वाली सुगंध से मुग्ध होकर उस अदृश्य पुष्प का रम्य रूप आँखों के सामने नाच उठता है, उसी प्रकार रेखा ने सपने में कांचन की प्रिय पत्नी के रूप में खुद को देखा था। फिल्मों में उसका कैरियर बन पाएगा या नहीं, इस बात की कांचन को शंका थी। इसलिए शादी की बात वहीं खत्म हो गई थी और रेखा ने महाविद्यालय में दाखिला ले लिया था। कॉलेज के मोहित करने वाले माहौल में रेखा इस सपने को भूल भी जाती, किंतु बार-बार कांचन की मुलाकात उसके मन की मूक भावना को मुखर बना देती थी। अपनी पहली ही फिल्म से कांचन छात्राओं का हीरो बन गया था। उसकी लोकप्रियता देखकर रेखा की भावनाएँ उमड़ पड़ती थीं। पिछले क्रिसमस में जब वह भैया से मिलने आया था तब उसकी संदिग्ध बातों से भावनाओं का सागर और अधिक उमड़ने-घुमड़ने लगा था। जैसे, जिज्ञासा रूपी सूरज पर टिकने वाला भावी नन्हा इंद्रधनुष। भैया ने रेखा से पूछा था – ''नए साल का अपना राशिफल पढ़ा क्या तुमने?''

''कुछ अखबारों में केवल उतना हिस्सा ही पढ़ने लायक होता है, न?''

''तुम्हारी राशि के लोगों का इस वर्ष विवाह योग है।''

''बूढ़ी दादियों का भी?'' उसके इस सवाल से भैया कितनी जोर से हँसा था, पर फिर उसने जो कुछ कहा वह मजाक नहीं था। कांचन की पहली फिल्म से आत्मविश्वास बढ़ गया है। किंतु साथ ही दो-तीन साल तक शादी न करने का उसका निश्चय डगमगाने लगा है। नौ से छह बजे तब स्टूडियो में काम करके आने पर वह पूरी तरह थक जाता है। कई बार तो रात-भर जागना पड़ जाता है। अकेलेपन के कारण उसके थके शरीर और मन को उसका अपना कमरा किसी अँधेरी जेल के समान लगता। ''मिल का मजदूर दारू क्यूँ पीता है, यह मेरी समझ में आने लगा है।'' रेखा के सामने उसने यह बात कही

थी। भैया ने उसे जवाब दिया था, ''रोग और मोह दोनों के मामले में पहले से ही सावधान रहना चाहिए।'' बाद में दोनों के बीच क्या बातें हुईं यह रेखा को पता नहीं चल पाई, किंतु भैया के राशिफल के प्रश्न से उसका अर्थ वह समझ गई थी।

इंटरवल के बाद की फिल्म आकर्षक होने के बावजूद रेखा को वह यमलोक में नाचने वालों का नाच लगा। बीच-बीच में उसकी आँखों के सामने जीवन के बीते हुए दृश्य उभर आते। कॉलेज में आने के बाद रूममेट के रूप में शीला से उसकी पहचान हुई। उससे वह तीन-चार साल बड़ी थी तथा असमय वैधव्य के कारण गंभीर स्वभाव वाली इस सहेली के साथ वह कैसे निभा पाएगी, इस बात का डर उसे पहले ही दिन से लग गया था। किंतु यह डर देखते ही देखते खत्म हो गया और उसकी जगह प्रेम ने ले ली। केवल बड़ी बहन के प्यार के रूप में उसका फायदा उसे हुआ, यह बात नहीं थी बल्कि गणित जैसा कच्चा विषय भी उसका घर बैठे पक्का हो गया था। डॉक्टर बनने के लिए वह डेढ़ साल के बाद पूना छोड़कर जाने वाली है, इस बात की कल्पना भी नहीं करना चाहती थी – इतना अधिक अपनापन हो चुका था।

उससे मिलने आने वाला कांचन से शीला का परिचय धीरे-धीरे बढ़ने लगा और जिसका यह परिणाम! उसने सोचा स्नेह और बैर की सीमा क्या एक-दूसरे के इतनी नजदीक होती है? इन सोचों को झटक कर उसने कांचन और शीला की तरफ देखा। दोनों हँस रहे थे। फिल्म की तरफ ध्यान न होने के कारण रेखा ने उसका अन्य अर्थ ले लिया। फिल्म खत्म होने पर उठते हुए शीला ने पूछा, ''फिल्म कैसी लगी रेखा?''

''अच्छी''

''अंधा पसंद आया कि नहीं तुम्हें?''

''अंधे को पसंद करने के लिए मैं कोई अंधी नहीं हूँ रेखा?''

उसके इस जवाब से शीला चौंक गई पर तुरंत कांचन की ओर घूम कर बोली, ''दीपक और रूप कुमारी इन्हें तो मैं अभी से भूल गई। किंतु अंधा सूरदास और कल्लू की माँ की याद काफी दिनों तक बनी रहेगी।''

''फूलों का रंग लोग तुरंत भूल जाते हैं, किंतु उसकी सुगंध वह भूल नहीं पाते हैं।'' कांचन ने उत्तर दिया। रेखा को लगा फूल और सुगंध, कांचन और शीला इन लोगों का मन एक हो जाने के कारण इनके बोल भी एक हो गए हैं।

जहाँ काँटा चुभा हो वहाँ सूई से खरोंचने के बाद भी काँटा न निकले किंतु वह दुखने लग जाए, ऐसी ही हालत रेखा की थी। उस रात उसे ठीक से नींद भी नहीं आई। किसी शरारती बच्चे की तरह उसका मन अनिद्रा में भी हलचल मचा रहा था। कांचन शीला से घड़ी कब ले गया, यह रेखा को पता भी नहीं था। इसलिए उसे लगा

मेरी अनुपस्थिति में भी ये दोनों मिलते हैं। ''जिस जमीन पर वह अपने भविष्य का सुखमय मंदिर खड़ा कर रही थी उसका मालिक कोई और हो रहा है...।'' यह सोचकर वह विचलित हो गई।

दूसरे दिन सुबह वह उदासी ओढ़े हुए उठी। प्रातः उठकर अलजेब्रा हल करती बैठी शीला कुर्सी पर बैठे-बैठे बोली, ''आज कली कुम्हलाई हुई लग रही है।''

''गरम पानी में कली कभी खिलती है क्या?''

रेखा का मूड कुछ बिगड़ा हुआ उसे लगा, पर वह भी कम मान वाली नहीं थी। परीक्षा में प्रथम आने के लिए उसे साँस लेने तक की फुरसत नहीं थी। रेखा के मौनव्रत के कारण उसका पढ़ाई में मन नहीं लग रहा था। कई बार रेखा की विचित्र निगाहें देखकर उसे अजीब-सा लगता। उसके मन में यह चाह भी उभरी कि उसे गले से लगाकर यह पूछे कि उसे क्या हो गया है। किंतु उसके स्नेहिल मन को स्वाभिमान ने रोक दिया और वह चुप बैठी रही। शीला को यह याद भी नहीं था कि कांचन की भेजी चिट्ठी का लिफाफा उसने फाड़कर कचरे के डिब्बे में डाला है। अतः उन टुकड़ों को लेकर अक्षरों को निहारती रेखा कितनी देर से बैठी है, यह बात उसे कैसे समझ में आती। आजकल रेखा और शीला के कमरे का शोर कुछ कम होने का अहसास अन्य छात्राओं को भी रहा था। इस चुप्पी पर उन्हें आश्चर्य होता, पर उन्होंने सोचा कि ''परीक्षा रूपी तूफान के पहले की यह शांति होगी।'' शीला को तूफान का जरा भी भय नहीं था, पर रेखा के अंतर्मन के तूफान उसकी समझ में नहीं आ रहे थे। उसका मौनव्रत बढ़ने लगा। बिना पहेली के तो वह बात भी नहीं करती थी। एक बार हाथ में किताब लेकर आकाश की शून्यता की ओर निहारने वाली रेखा से शीला ने पूछा, ''परीक्षा नजदीक आ रही है रेखा'' इस पर ''तुम्हारी! मेरी नहीं'', इतना ही बोलकर उसने आँखें बंद कर लीं। किंतु इस तूफान का अंत बिलकुल अप्रत्याशित ढंग से हुआ। एक दिन अचानक रेखा के भैया आए और उसकी जल्दी ही शादी होने का समाचार सबको दे डाला – ''अब तो तुम हीरोइन बन जाओगी।'' साथ पढ़ने वाली छात्राओं ने उसे चिढ़ाना भी शुरू कर दिया। मजाक भी कितना मधुर होता है! इसका वह अनुभव करने लगी।

नेग देते समय रेखा की अन्य पसंदीदा चीजों के साथ एक किताब भी शीला ने उसे दी 'अलजेब्रा तो नहीं है न?'' रेखा ने शरारत वाले ढंग से पूछा।

शीला केवल मुस्करा दी थी। रेखा ने पुस्तक को पॉकेट से बाहर निकाल कर देखा तो एक प्रसिद्ध उपन्यासकार का नया उपन्यास था – ''सुगंध।''

रेखा की आँखों के सामने हरसिंगार के फूल तथा 'भाग्यचक्र' फिल्म के दृश्य उभर आए।

सुख के दिन पलक झपकते ही बीत जाते हैं। परीक्षा के डर से रेखा नींद से एकदम जाग जाती, पर वह माँ बनने वाली है यह बात याद आते ही लजाकर तकिए में मुँह छुपा लेती। इसी शर्मिली स्थिति में उसकी आँखों के सामने गत वर्ष की कई यादें उभर कर चली आईं। महाबलेश्वर में बिताए हनीमून के समय की चाँदनी की छटा अभी भी उसके आसपास छिटकी है इस बात का अहसास होता। जून में रिलीज होने वाली दूसरे फिल्म में कांचन का काम पहले से कहीं बेहतर हुआ था। उस फिल्म की एक ही बात रेखा को पसंद नहीं आई थी। वह थी – उसकी कलाई पर शीला की घड़ी।

सितंबर-अक्तूबर के महीने में कांचन और रेखा घूमने निकल जाते तो संभवतः शीला उन्हें मिल जाती। एक बार कांचन ने उसे अपनी चालू फिल्म की शूटिंग देखने का बहुत आग्रह किया। उसने हँसते-हँसते उत्तर दिया, ''हमारी भी शूटिंग चल रही है।''

''कैसे!''

''रटंती की! इस कथानक में फिजिक्स पति है, कैमिस्ट्री उसकी पत्नी है। पत्नी स्वभाव से दीन है पर पति...''

कांचन के ठहाके लगाने से आगे के शब्द मुख से न निकले। फिर भी मार्च की परीक्षा खत्म होते ही तुम्हारी शूटिंग, रेखा की कुकिंग सब कुछ देखने भी आऊँगी और रहने के लिए भी। यह बात उसने खुद स्वीकार कर ली।

कांचन के इकरार पर पूना में प्रसव करवाने का तय हुआ। रेखा की विधवा मामी उनके यहाँ रहने वाली थी। छठे-सातवें महीने से ही रेखा का स्वास्थ्य बहुत ठीक नहीं था। इसलिए उसके भैया ने भी मायके ले जाने की जिद नहीं की।

समय पर रेखा ने एक स्वस्थ लड़के को जन्म दिया। उसकी तबीयत देखकर डॉक्टर डरता था कि कहीं बुखार न आ जाए परंतु पहला दिन अच्छा बीता। दूसरे दिन कांचन के साथ शीला सौरी में मिलने आई। उसकी परीक्षा खत्म हो गई थी। ''भाँजे की बरही की तैयारी के लिए आई हूँ मैं'' उसके इस कथन से रेखा खिलखिलाकर हँस पड़ी। परंतु पलंग पर पड़े-पड़े ही कांचन और शीला की जाने वाली जोड़ी को पीछे से देख रही थी। फिर पता नहीं किस सोच में डूब गई। दूसरे दिन उसे थोड़ा बुखार आया देख डॉक्टर चकित हो गए। कांचन और शीला बिना रोक-टोक के आठ दिन तक घर में रहेंगे, रात-भर वह इस बारे में ही सोचती रही।

ग्यारहवें दिन रेखा घर आई तो भी अनमनी स्थिति में ही। कांचन की फिल्म की बहुत भाग-दौड़ हो रही थी। अतः बरही आगे धकेल दी गई थी। इन आठ दिनों में शीला क्या करती रही है – इस बात की जानकारी चुपके से उसने मामी से ले ली

थी। दोनों आधी रात में ही घूमने चले जाते, घर में फोन लगाकर हँसते-खिलखिलाते रहते। एक बार तो कांचन के दिए फूल को यह विधवा लड़की बालों में लगाकर आईने के सामने खुद को निहार रही थी। एक नहीं अनेक बातें मामी ने रेखा को बताईं। ''कांचन ने मुझे धोखा दिया। आज नहीं तो कल वह बेवफाई करेगा।'' – इस बात के अलावा उसके दिमाग में कोई और बात आ ही नहीं रही थी। उसका पति कुशल अभिनेता है, इस बात का उसे कितना गर्व था। पर वही बात अवगुण बन गई। जो हर फिल्म में नई-नई सुंदर नायिकाओं के साथ काम करता है। वह मुझसे अटूट प्रेम कैसे कर सकता है? उल्टे यह सवाल उसके मन में उठने लगा था। कमजोर होने के कारण अनेक बार कांचन की खुशी में वह शामिल नहीं हो पाती थी। महाबलेश्वर घूमने जाने पर उसने एक बार उससे पूछा था, ''हमने शादी की बहुत जल्दबाजी की!'' कांचन के कहे सभी वाक्य उसे समझ में नहीं आए थे, किंतु वह खुद से डरता है। यह बात अब उसे समझ में आ गई थी। उसका सबूत भी अब उसे दिखाई देने लगा था।

कांचन के साथ शीला हर रोज शूटिंग देखने जाती थी। शाम को दोनों घूमने निकल जाते। शीला घर की मालकिन और वह अतिथि बन गई है। बिस्तर पर पड़े-पड़े यह विचित्र-सा ख्याल उसके दिमाग को पागल बना देता था। शीला को कभी-कभी घर का काम करते देखकर कांचन एक बार बोला, ''मेहमानों को भी घर वालों के जैसा बनना पड़ता है न।''

''घर वालों के जैसा क्यों? घर ही उसका है।'' – रेखा बोली।

यह बात सुनकर शीला ने रेखा की ओर देखा, वही पिछले साल वाली अजीब-सी नजर! सारी बात समझ में आ गई। जलन के मारे उसकी आँखें लाल हो गई थीं। रेखा का बार-बार उसे अपमानित करना, उसकी समझ में आ गया था। कांचन के बाहर जाने पर उसने रेखा से अलविदा ली। अचानक से शीला चली क्यों गई, यह कांचन की समझ में नहीं आया। रेखा से भी पता नहीं चला, पर उसे लग गया कि दोनों में कुछ झगड़ा हुआ होगा। दूसरे दिन सुबह होने तक वह चुप रहा ताकि तब तक धुआँ छंट जाए।

सुबह की चिट्ठियों में रेखा के नाम से एक चिट्ठी थी। उस पर लिखे शीला के अक्षरों को वह पहचान गया था। वह अत्यंत चकित हुआ। रेखा को चिट्ठी देकर वह बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद उसने झाँक कर देखा तो रेखा आँखें पोंछ रही थी। उसे धीरज देने के लिए वह अंदर गया। उसने उसके हाथ दो चिट्ठियाँ रख दीं। उनमें से एक चिट्ठी खुद कांचन की थी, जो साल-भर पहले लिखी थी। शीला की चिट्ठी वह पढ़ने लगा –

''प्रिय रेखा, तुम्हारी तबीयत अधिक खराब न हो जाए इसलिए मैं अचानक से चली आई। कांचन से कहना मुझे माफ करे। रेखा मैं भी इंसान हूँ। मैं जानती हूँ कि प्रेम और लोभ के साथ-साथ जलन भी मनुष्यों में होती ही है। पर उसकी भी कोई सीमा होती है। गुलाब की सुगंध पाने के लिए काँटा भी चुभे तो बुरा नहीं लगता, किंतु जान-बूझकर बबूल के काँटों पर चलने का पागलपन भला कौन करेगा? इस चिट्ठी के साथ में शादी से बहुत पहले कांचन द्वारा मुझे लिखी कई चिट्ठियाँ भी भेज रही हूँ। उसका प्यार पाना होता तो उसकी शादी का प्रस्ताव ठुकराती नहीं। डॉक्टर बनकर मिशनरी लोगों की तरह देहातों में काम करने का लक्ष्य न होता तो मैं खुशी-खुशी से उसकी पत्नी बन जाती। मैंने इंकार कर दिया और तुम उसकी रानी बन गई। तुम्हारे सुख-वैभव पर मैंने कभी शक नहीं किया। न ही करूँगी।

किंतु उसकी पत्नी न बन सकी तो दोस्त भी न रहूँ – यह कहाँ का न्याय है? स्त्री-पुरुष के स्नेहपूर्ण संबंधों को हम अच्छी नजरों से देख ही नहीं पाते हैं। जो इनाम का दस हजार पुरस्कार न लेता हो, उसने दस रुपए चुरा लिए हैं – इस बात पर यकीन कर पाओगी। रेखा फूल के नजदीक जाने वाला आदमी शहद लेने के लिए जा रहा है, ऐसा तितली को लगता है किंतु दूर खड़े रहकर सहज आने वाली सुगंध पर भी कुछ लोग संतुष्ट हो लेते हैं यह बात उसे कैसे समझाई जाए? अधिक बोल दिया हो तो माफ करना। मुन्ने को मेरा प्यार! उसका नाम रखने पर मुझे बता देना।

– तुम्हारी शीला''

''रेखा के आग्रह पर बरही के लिए बुलाने आया हूँ'' कांचन के यह बताने पर शीला को आश्चर्य हुआ। अपने मन की उलझन को छुपाने के लिए उसने पूछा – ''क्या नाम सोच रखा है मुन्ने का?''

''सुगंध।''

❑

मलयालम से अनूदित

जकारिया
अनु. के.जे. हेलेन

तीन बच्चे

तीन बच्चे स्वर्ग की ओर वाले मार्ग पर मिले। मृत्यु का द्वार पार करने के बाद उनका मन अलौकिक ज्ञान से संपन्न हो उठा। उनके दोनों ओर स्वर्ग के मार्ग के विशेष दृश्य चमकने लगे। उनके आग्रहों में से कुछेक को छोड़ बाकी सब इस दृश्य में थे, यही इसकी विशेषता थी। जमीन से सिर उठाए जड़ों, झाड़, पत्तों, घास और पत्थरों से भूरा-भूरा एक ग्रामीण मार्ग था – स्वर्ग का मार्ग। उस मार्ग से गुजरने वालों की पैरों की रगड़ से मार्ग चिकना हो गया था। उन जड़ों और पत्थरों के बीच चोरों के समान छोटी-छोटी घास सिर छुपाए हुए थी। मार्ग पर पत्ते गिराते उन वृक्षों को इन बच्चों ने नहीं देखा। वे दूसरे आकर्षक दृश्यों को देखते रहे। एकाएक एक बच्चा पृथ्वी के एक वृक्ष के बारे में बड़े दुख से सोचने लगा। तब उस मार्ग के वृक्ष उसकी दृष्टि में पड़ने लगे। वह उनमें से एक वृक्ष को दुख से देखने लगा। उसके साथी उसके मुख पर विषाद भाव को देखकर कारण पूछने लगे।

उसने कहा, ''टेढ़ी-मेढ़ी शालाओं, हरी पत्तियों और अनेक वर्ण के छाल वाला यह शांत वृक्ष मुझे दुखी बना रहा है।''

''तुम क्यों यह दृश्य देख रहे हो? चलो, ताड़ के वृक्षों, झुरमुटों, तालाबों से भरे प्रदेश के ऊपर से शाम को एक विशाल धनुष के समान अपने घोंसलों की ओर स्वर्णिम आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखें।'' दूसरे बच्चे ने कहा। वह बच्चा भीगे नयनों से बोला, ''मेरा मन इस वृक्ष को छोड़ना नहीं चाहता। ऐसे ही एक वृक्ष के नीचे मैं अपने माता-पिता के साथ मारा गया था। धर्मांधों को आते देख मेरे माता-पिता अपने स्नेह के प्रतीक मुझे लेकर दूर जंगल के किनारे, उस वृक्ष के पीछे आ छुपे, जहाँ वे एक समय प्रेम विवश होकर मिलन के लिए आया करते थे। शरणार्थियों की पदचाप पास से गुजर रही थी।

गाँव से डरावनी, भयावह आवाजें सुनाई पड़ीं। कुछ ही देर बाद थके हुए मेरे माता-पिता सो गए। एक तितली अपने आकर्षण से बाँध मुझे उनसे दूर ले गई। मेरे गाँव से आग और धुआँ उठ रहा था। एक क्षण मैं सहमा-सा उसे देखता रहा। फिर उस तितली के पीछे-पीछे दौड़ने लगा। तभी एक अट्टहास सुन मैं चौंक कर मुड़ा, लोगों की एक टोली मेरी ओर दौड़ी चली आ रही थी। मैं उस पेड़ के पीछे की ओर भागा। आँखें खोलने से पहले ही मेरे माँ-बाप के सिर शरीर से अलग हो चुके थे। मुझे उन्होंने तत्काल नहीं मारा। मेरे हाथों को पेड़ की शाखा से बाँध, वे नशा कर विश्राम करने लगे। फिर उन्होंने मेरे दोनों पैर काट डाले। मेरी आँखें निकाल लेने से पहले मैंने उस पेड़ के हरे मुख की ओर देखा। मित्रो! मुझे उसी की याद है। पता नहीं, मेरे माता-पिता कहाँ हैं? मैं ही उनकी मृत्यु का कारण हूँ। वे भी शायद स्वर्ग के इसी मार्ग पर होंगे। शायद उन्होंने भी इस मृत्यु को देखा होगा। उन्होंने भी मुझे याद किया होगा।'' उस बच्चे ने पेड़ का आलिंगन कर चुंबन लिया। उसने अपने साथियों को निर्द्वंद्व भाव से देखा। वे उसके पास आए, उसके काँपते शरीर को पेड़ के काई जमे तने को अपने प्यार-भरे हाथों से आलिंगन कर उन्होंने उसे दिलासा दी।

उस समय स्वर्ग मार्ग पर बच्चों से कुछ आगे उस बच्चे के माता-पिता जा रहे थे। अपने पुत्र का सिसकना महसूस कर उन्होंने परस्पर जुड़े अपने हाथों को और भी मजबूती से थाम लिया। मार्ग पर खड़े वे चारों ओर देखने लगे। युवा पति, बिजली-सी सौंदर्यवती अपनी पत्नी के नयनों में दुख देखने लगा। वे फिर चलने लगे। अद्‌भुत हवाएँ सरसराती हुईं उनके दुख को सहलाने लगीं। क्षितिज से संहार और सृष्टि का सर्जन सुनाई पड़ा। दूर स्वर्ग के द्वार पर दिखते प्रकाश की ओर वे बढ़ने लगे।

वृक्ष का आलिंगन करने वाले बच्चे के हाथों को अपने हाथों में लेकर एक बच्ची बोली – ''मित्र तुम्हारा दुख मुझे भी दुखी बना रहा है। तुम्हारा सिसकना मुझे अपने माता-पिता की याद दिला रहा है। उनकी भी मृत्यु मेरे ही कारण हुई। युद्ध और यातनाओं से बचकर मुझे गोद में लिए हुए शरणार्थी बन वे भाग रहे थे। वे बारी-बारी से मुझे गोद में उठाकर चलते रहे। एक हाथ से सिर पर रखी गठरी को पकड़े, दूसरे हाथ से मुझे थामे वे हाँफते-हाँफते हर शब्द पर डरते हुए अपने राज्य की सीमा पार कर दूसरे राज्य में प्रवेश कर शरण प्राप्त करने के लिए बड़ी तेजी से दौड़ रहे थे। उनकी दुख-भरी जिंदगी की एकमात्र खुशी मैं ही थी, उनकी इकलौती बेटी। मेरे लड़की होने को दुख न मानते हुए उन्होंने मुझे प्यार किया। सीमा प्रांत की कँटीली झाड़ियों से मेरे शरीर को बचाने के लिए मुझे छाती से लगाए हाथों से छुपाकर वे चुपचाप चले जा रहे थे। तभी चाँदनी में मासूमों का शिकार करने वाले आते दिखाई पड़े।

''मेरे माता-पिता मुझे लेकर एक कँटीली झाड़ी के पीछे जा छिपे। एक काँटा मेरे बाएँ हाथ में जा चुभा। देखो न, इस हाथ में लाल निशान। मैं सुबकने लगी। मेरे माता-पिता मुझे धीरे-से चुप कराने लगे, लेकिन दर्द को न सह पाने के कारण धीरे-से सिसकी निकल पड़ी। मानव-शिकारियों ने उसे सुन लिया। वे हमारी ओर दौड़े। उनकी बंदूकों के सामने मुझे छाती से लगाकर मेरे माता-पिता भागे। गोली खाकर गिरते समय मैं उनके हाथों में थी। उनके शरीर से मैं ढक गई। मानव शिकारी उन शव-शरीरों को पैरों से रौंदकर चले गए। कुछ देर बाद मैं उनके मृत शरीर के नीचे से रेंगती हुई बाहर निकली। मेरी माँ की आँखें खुली हुई थीं। मैं उन आँखों को देखकर रोने लगी – ''अम्मा, अम्मा!'' माँ की खुली आँखों में मैंने दो चंद्रमाओं को देखा। अपने पिता का मैंने आलिंगन किया। तभी मुझ पर किसी की परछाई पड़ी। मैंने घूमकर देखा तो मानव-शिकारियों की दूसरी टोली मेरे पास खड़ी थी। उनमें से एक ने भाले को मेरे सीने के आर-पार कर दिया और भाले पर मेरे शरीर को टांगकर अट्टहास करने लगा। मुझ पर प्रकाश डालने वाले चंद्रमा को मेरी आँखें फिर न देख सकीं। मित्रो! मैं चंद्रमा को देखने के लिए लालायित हूँ। अपने माता-पिता के लिए मेरा हृदय तड़प रहा है।''

ज्यों ही उस बच्ची ने अपनी कहानी को खत्म किया, त्यों ही पेड़ों के ऊपर मेघाच्छन्न आकाश से चंद्रमा झाँकने लगा। एक-दूसरे का हाथ पकड़े तीनों बच्चों ने एक क्षण चंद्रमा के दर्शन का आनंद लिया। एक बच्चा बोला – ''काश! हम पक्षियों का गीत भी सुनते।'' तत्क्षण पक्षियों का मधुर गान भ्रमरों के गुंजन के समान उन्हें सुनाई पड़ने लगा, लेकिन उस बच्ची के माता-पिता कहीं दिखाई नहीं पड़े।

उस वक्त उस बच्ची के माता-पिता, गठरियों और मानव-शिकारियों से मुक्त होकर 'शायद हमारी बच्ची हमारे पीछे आ रही होगी' – सोचकर बार-बार मुड़कर देखते हुए बच्चों की उस टोली से बहुत दूर स्वर्ग के दरवाजे से आगे बढ़ रहे थे। अनजाने ही उनका मन चंद्रमा के प्रकाश का आग्रह करने लगा। उनकी बच्ची को खुश करने वाले चंद्रमा ने उनपर भी अपनी किरणें बिखेर दीं। वे एक-दूसरे का कंधा पकड़े अपनी आहत बच्ची को याद कर, चंद्रमा को देखकर रोने लगे। फिर दूर स्थित स्वर्ग के मार्ग के प्रकाश की ओर तेजी से बढे।

तीसरी बच्ची आकाश की ओर देखती हुई अपने साथियों का हाथ पकड़ स्वर्ग के मार्ग की ओर अग्रसर हुई। वह बोली – ''मित्रों! हम अपनी यात्रा जारी रखेंगे। मुझे स्वर्ग का दरवाजा देखने की उत्सुकता है। स्वर्ग के अंदर क्या होगा? वहाँ कौन हमारा इंतजार कर रहा होगा?''

उसके मित्र एक साथ बोले – ''वहाँ हमारे माता-पिता इंतजार कर रहे होंगे। वे

फिर प्यार से हमारा आलिंगन करेंगे। गालों, कपोलों और सीने पर चुंबन देंगे। स्वर्ग में और क्या है?'' तीसरी बच्ची बोली – ''मित्रों! मैं अकेली हूँ। मेरी कौन प्रतीक्षा कर रहा होगा, यह मैं नहीं जानती। मेरे पास यादें नहीं हैं। मैं भ्रूण-हत्या का शिकार हुई हूँ। अपनी माँ के गर्भाशय की लालिमा भरा अंधकार और निःशब्दता ही मात्र मेरी यादें हैं। फिर मेरे पास मेरी हत्या के वक्त की विभीषिका है।''

वह बच्ची दोनों का हाथ पकड़कर उनकी आँखों में झाँकने लगी और बोली, ''मुझे धरती पर जन्म लेकर सूर्य के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला।''

अचानक उसके मित्रों की आँखों से निकलने वाले आँसू रत्नों की तरह चमकने लगे, क्योंकि उनकी इच्छा के अनुसार सूर्य मेघों को चीरकर आकाश में प्रकट हो चुका था। एक क्षण के लिए वह बच्ची रेतीले आँगन के पार सूर्य के प्रकाश में दौड़ी। वह बरामदे में उसे निहारती अपनी माँ को देखकर मुस्कराई।

उस वक्त उस बच्ची की माँ एक अस्पताल की खाट पर पड़ी अपनी खाली कोख पर अनजाने में ही हाथ फेरकर, पति के हाथों में अपना शुष्क हाथ रखकर, उसके चेहरे की ओर निर्विकार भाव से देख रही थी। उसका हृदय अनेक अकथ्य निर्जीव भावों से भरा हुआ था। कुछ दूरी पर उसकी बच्ची का अनुपयोगी निर्जीव शरीर अस्पताल की प्रदर्शनीय वस्तुओं के बीच में एक जार के द्रव में तैर रहा था। एक चिकित्सक उस जार पर एक टंकित कागज चिपका गया, जिस पर तकनीकी विवरण लिखा हुआ था।

तीन बच्चों की वह टोली स्वर्ग के दरवाजे की चमक को दूर से देखने लगी। इतना करुण प्रकाश दूसरा किसका है? टेढ़े-मेढ़े ग्रामीण पथ के उस छोर पर वह बच्ची सबको अपनी ओर आकर्षित कर मुस्कुराती रही। तीनों बच्चे उछलते-कूदते, नाचते-गाते हुए उस ओर पहुँचे। द्वार पर ईश्वर अपने आकर्षक नयनों से उन्हें दूर से निहारते हुए उनका इंतजार कर रहे थे। वे एक गंभीर मुस्कान के साथ उनका आना देखने लगे। बच्चे उन्हें आश्चर्य के साथ देखकर चुप हो गए और उन्होंने अपनी चाल भी धीमी कर दी।

ईश्वर ने वात्सल्य के साथ कहा, ''जल्दी आओ, दौड़कर आओ।'' और उन्होंने अपना प्यार-भरा हाथ उनकी ओर बढ़ाया। वे कौन हैं, उनसे क्या कहना है, यह न जानते हुए उनके निकट पहुँचे और एकटक देखने लगे।

ईश्वर ने उनसे हँसकर कहा, ''तुम्हें जो पसंद हो, जल्दी कहो, मैंने सब तैयार कर लिया है।'' पहले और दूसरे ने कुछ लज्जा और कुछ आशा के साथ कहा, ''माता-पिता।''

तीसरी बच्ची चुपचाप भगवान के मुस्कुराते होंठों को देखने लगी। ईश्वर ने अपने पीछे की छाया देखने से पहले दो बच्चों के माता-पिता को उनके पास भेजा। बच्चे रोते हुए उनकी गोद में पहुँच गए। फिर हँसे। माता-पिता अपने बच्चों को बार-बार चूमने

लगे और उनके मुख को देख-देखकर प्रसन्न होने लगे। खुशी की लहर एक इंद्रधनुष के समान उन पर छा गई। लौकिक जीवन और उन्हें दुख देने वाली यादें पुराने कपड़े की तरह उनसे अलग हो गईं।

ईश्वर उस एकाकी बच्ची के समीप पहुँचे। उसे अपनी गोद में लेकर उसके कपोलों और भाल पर चुंबन लेने लगे। 'देखो!' ईश्वर ने ऊँचाई की ओर इशारा किया। वहाँ सूर्य नृत्य कर रहा था। बच्ची के चेहरे पर मंद मुस्कान छा गई। 'देखो!' भगवान ने क्षितिज की ओर इशारा किया। वहाँ चंद्रोदय की आभा थी। बच्ची मधुर-मधुर मुस्काई। 'देखो!' भगवान ने अपनी ओर इशारा किया। तब बच्ची ने देखा कि वह स्नेहमयी, मृदुला माँ की गोद में बैठी है। उसने अपनी माँ के मधुर-मधुर होंठों को, चिकने गालों को और भ्रमरों से काले करुणा भरे नेत्रों को छुआ। अम्मा! धीमे स्वर में पुकारकर उसने उस चेहरे में अपना चेहरा छुपा लिया और गले से लिपट गई। ईश्वर ने स्वर्ग का दरवाजा धीरे से बंद कर दिया। वह अपनी गोद के नए बच्चों की यादों में खोए स्वर्ग के मनचाहे स्थानों में घूमने लगे। किसी की आशाओं से उत्पन्न मंद पवन से स्वर्ग का दरवाजा फिर से खुल गया।

❑

A.J. Thomas

Hunger

Walking up the gulli
A family of
Mother father two tiny daughters
Noisily making their way.
The dog
With a roti in its jaws
looking all around in trepidation
Of someone snatching it away
Sneaked into
An enclosed square of bare land
Lying down on its belly
Munching away
Darting furtive glances
Left and right
In total aloneness
Letting go of the morsel
Snapping at bothering flies
Finishing the meal....
Rolling in the dust
Lying on its back,
Looking at the stars....
The lost look of past births
Casting shadows in its forlorn eyes
Munching away still
The imaginary roti....
Thinking about possibly
The parents it never looked after.

❑

ए.जे. थॉमस
अनु. अनीता पंडित

भूख

गली में घूमता एक परिवार
माता-पिता और दो छोटी बच्चियाँ
जा रहे हैं
शोर करते हुए।
जबड़े में एक रोटी दबाए कुत्ता
घबराहट में साथ चारों ओर देखता हुआ
कि कोई झपट न ले –
खिसक जाता है
पास की वर्गाकार खाली जमीन में
पेट के बल झुककर
चबाता है –
चोर नजरों से दाएँ-बाएँ देखते हुए
निपट अकेलेपन में
निवाले तोड़ता
तंग करतीं मक्खियों को उड़ाता
समाप्त करता है रोटी।

धूल में लिथड़ते हुए
पीठ के बल लेटकर
सितारों को देखता है...

पूर्व जन्मों पर खोई निगाहें डालता
आशान्वित आँखों में अपनी
देखता प्रतिच्छाएँ
चबाते हुए अभी भी काल्पनिक रोटी...
सोचते हुए संभवतः
माता-पिता के बारे में
जिनकी कभी
परवाह नहीं की उसने।

❑

गौतम दास गुप्ता
अनु. डॉ. देवेंद्र कुमार देवेश

सहारनपुर की चिट्ठी

तुम्हें नहीं लिखी मैंने सहारनपुर से चिट्ठी
शेरशाह के शासन में लगाए गए
विशाल हो चुके पीपल के पेड़ के शिखर के पार
दिखाई देता है डाभ नींबू-सा चाँद
दुःख है कि मैं पठान नहीं
तभी तो वृक्ष के तने पर लगी
सीलमोहर पढ़ नहीं सकता
चंद्रालोकित ग्रैंड ट्रंक रोड पर
पठान कुल का तांगा वाला
मुलतान राग में कुछ गा रहा था
चाँद का प्रकाश
खाली लिफाफा और
तुम्हारे मेरे बीच
वह कालपुरुष
स्थिर डाकपेटी
और बिखरे हैं फूल पथ पर।

❑

गौतम दास गुप्ता
अनु. डॉ. देवेंद्र कुमार देवेश

डाल्फिन

चतुराई से बने जाल में काँपती है भोली डाल्फिन
हँसी-खेल में उसे थका देते हो चतुर मछुवारे
यदि कभी वह अशांत होती है

तो थप्पड़ लगाते हो
तर्जनी उठाकर बोलते हो
हम ऊँचाई पर हैं

मत करो उछल-कूद
शांत रहो जल में

क्षणिक उद्धत वह जीव किसी शिशु की तरह
लगातार हँसता और फिर खेलता है जल में।

❑

संतोष खन्ना

पोलिश कविताओं का हिंदी में सफल काव्यानुवाद*

समूचे विश्व में तीन हजार से अधिक भाषाएँ हैं और उनमें से अनेक भाषाओं में साहित्य की रचना की जा रही है। विश्व में कोई भी व्यक्ति सभी भाषाओं का ज्ञाता नहीं हो सकता। अधिक हुआ तो वह दो-चार-दस-बीस भाषाएँ सीख लेगा। ऐसे में अनुवाद ही वह विधा है जो हमें विश्व की भाषाओं में रचे जा रहे साहित्य से परिचित कराती है। भारत तो भाषाओं के क्षेत्र में एक विकट विग्रह (Linguistic giant) है। यहाँ 1652 से भी अधिक भाषाएँ हैं और उनमें से अनेक भाषाओं में और विशेष तौर पर आधुनिक भारतीय भाषाओं में विपुल साहित्यिक कृतियाँ रची गई हैं और रची जा रही हैं। यहाँ न केवल भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में परस्पर आदान-प्रदान हो रहा है बल्कि विश्व साहित्य की अवधारणा, उसकी पृष्ठभूमि, कथ्य, संवेदना, वैचारिकता और शिल्प से परिचित होने के लिए अनुवाद विधा का सहारा भी लिया जा रहा है। कह सकते हैं कि अनुवाद ही परस्पर भाषाओं में एक ऐसा सेतु है जिससे सभी लोग विश्व साहित्य और भारतीय साहित्य में प्रवाहित मानवीय गरिमा, मानवीय मूल्यों एवं आह्लाद की धारा से रूबरू हो रहे हैं।

यह अनुवाद विधा का ही कमाल है कि पोलैंड के समकालीन प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध कवि आदम ज़गयेफ़स्की की पोलिश भाषा में रचित कविताओं में से चुनिंदा कविताओं के हिंदी अनुवाद का 'परायी सुंदरता में' नामक काव्य-संग्रह के जरिए अद्‌भुत कविताओं का रसास्वादन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आदम ज़गयेफ़स्की के इस हिंदी काव्य संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए यह अहसास नहीं होता कि हम सात समुद्र पार

* 'परायी सुंदरता में' (काव्य-संग्रह), कवि – आदम ज़गयेफ़स्की, संपादक – प्रभाकर श्रोत्रिय, अनुवादक – मोनिका ब्रोवार्चिक एवं मारिय स्काकुय पुरी; प्रकाशक – साहित्य अकादमी, वर्ष 2011, पृष्ठ 184, मूल्य : 110/- रुपए।

किसी परायी भाषा में रचित कविताओं का अध्ययन कर रहे हैं। वास्तव में आदम ज़ग़येफ़स्की को अपने जीवन में देश-विभाजन की त्रासदी से भी गुजरना पड़ा था। आदम ज़ग़येफ़स्की वर्ष 1945 में भूतपूर्व पोलैंड के शहर ल्वूव में पैदा हुए, परंतु उनके जन्म के कुछ महीने बाद ही उनका परिवार ल्वूव को छोड़कर ग्लिवित्से में आ बसा था क्योंकि उस समय जो पोलैंड था, उसका विभाजन हो गया था। इसलिए उन्हें अपने ही देश में विस्थापित होकर शरणार्थी होना पड़ा था। 'आक्रमण, विभाजन और पराधीनता' की लंबी छाया उन्हें जीवन-भर घेरती रही। कहा जा सकता है कि आदम ज़ग़येफ़स्की को कुछ सीमा तक भारत के विभाजन की त्रासदी जैसी स्थितियों से गुजरना पड़ा था। उनकी अधिकांश कविताओं में उस दर्द और दंश को अभिव्यक्ति मिली है जिन्हें उन्होंने जीवन-पर्यंत झेला। भारत-विभाजन के कारण यहाँ के लोगों ने या तो वैसी ही त्रासदी झेली है अथवा देखी है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ज़गयेफ़स्की की कविताएँ किसी पराए देश की नहीं, अपने ही देश की कविताएँ लगती हैं।

'परायी सुंदरता में' काव्य-संग्रह (2011) साहित्य अकादमी ने प्रकाशित किया है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इस संग्रह को द्विभाषिक रूप में प्रकाशित किया गया है। यानी एक तरफ पोलिश भाषा में मूल कविता प्रकाशित की गई है और उसके सामने वाले पृष्ठ पर उसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इन कविताओं का संपादन प्रसिद्ध साहित्यकार एवं वर्तमान में साहित्य अकादमी की पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' के अतिथि संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय ने किया है। पोलिश साहित्य और विशेष रूप से आदम ज़ग़येफ़स्की की कविताओं के अंग्रेजी अनुवादक भारत में उपलब्ध हैं। आमतौर पर अंग्रेजी-इतर विदेशी भाषा में लिखित कविताओं के हिंदी अनुवादक और अंग्रेजी अनुवाद के जरिए किए जाने की प्रवृत्ति है। यानी अंग्रेजी अनुवाद को मूल मानकर उनका हिंदी अनुवाद किया जाता है। किंतु 'परायी सुंदरता में' काव्य-संग्रह की सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धि यह है कि इन कविताओं का पोलिश भाषा से सीधे हिंदी में अनुवाद किया गया है। वस्तुतः पोलिश कविताओं का सीधे हिंदी में अनुवाद का यह प्रथम काव्य-संग्रह है। जब किसी अंग्रेजी-इतर विदेशी भाषा में रचित कविताओं का अंग्रेजी के अनुवाद से हिंदी में अनुवाद किया जाता है तो ऐसी संभावना हो सकती है कि वह कुछ सीमा तक मूल से दूर जा पड़े अथवा उसमें मूल कविता का भाव या काव्य-तत्व उतना न आ पाए जितना कि मूल से सीधे अनुवाद में आ सकता है। वैसे भी काव्यानुवाद स्वयं में एक कठिन एवं जटिल कार्य है और काव्यानुवादक को सृजन की दोहरी प्रक्रिया से गुजरना होता है क्योंकि वह मूल की कला और सौंदर्य को उपयुक्त रूप से यथासंभव अंतरित करने का प्रयास करता है। जब किसी कविता के अनुवाद को मूल मानकर उसका अन्य भाषा में अनुवाद करना पड़ता है तो मूल

की कला और सौंदर्य के क्षरण की संभावना बढ़ जाती है क्योंकि मूल भाषा न जानने वाले अनुवादक के पास यह जानने का विकल्प नहीं होता कि अनुवाद में मूल कितना आ पाया है और कितना अनुपस्थित रह गया है।

'परायी सुंदरता में' कविता संग्रह का अनुवाद मोनिका ब्रोवार्चिक और मारिय स्काकुय पुरी, दोनों ने मिलकर किया है। मोनिका ब्रोवार्चिक पोलैंड के वार्सव विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग से एम.ए. एवं डॉक्टरेट कर पोलैंड में आदम मित्सक्योचिव विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग में पढ़ाती हैं। इनकी रुचि आधुनिक हिंदी साहित्य में है तथा वह हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाओं पर शोध कर रही हैं। इस संग्रह की दूसरी अनुवादक मारिय स्काकुय पुरी पोलैंड के वार्सव विश्वविद्यालय के भारतीय भाषाओं के विभाग से एम.ए. हैं और पिछले तीस वर्षों से दिल्ली में रही हैं। इन दोनों अनुवादकों की संक्षिप्त पृष्ठभूमि यह दर्शाती है कि उन्हें भारत का अच्छा ज्ञान और हिंदी भाषा पर उनकी पकड़ है। यही कारण है कि उनके पोलिश कविताओं के हिंदी अनुवादों को पढ़कर यह महसूस होता है कि उन्होंने हिंदी के मुहावरे को समझा है और कविता के मुहावरे पर भी उनका पूरा अधिकार है। अपने अनुवादों के बारे में इस काव्य-संग्रह की प्रस्तावना में उन्होंने यह लिखा है कि उन्होंने इन अनुवादों में हिंदी के प्रतिष्ठित कवि कुँवर नारायण से सहायता ली है। वे लिखती हैं – ''कुँवर नारायण ने शायद ज़ग़येफ़स्की की कविताओं में कुछ समानता और आत्मीयता का अनुभव किया होगा, इसलिए उनकी सहायता से हिंदी में अनुवाद की गई रचनाओं की जान में जान आई, जिसके लिए अनुवादक उनके बहुत कृतज्ञ हैं।''

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, आदम ज़ग़येफ़स्की का लगभग पूरा जीवन संघर्ष और भटकन की कहानी है। हर कवि अपने समय, अपनी परिस्थितियों और इतिहास की उपज होता है। कवि आदम ज़ग़येफ़स्की भी इसका अपवाद नहीं है। पोलैंड का पिछली दो शताब्दियों का इतिहास जहाँ एक ओर पोलैंड के विभाजन की त्रासदी का गवाह है (जिस दौरान लाखों लोग मारे गए) वहीं वह यह भी बताता है कि पोलैंड को द्वितीय विश्वयुद्ध, उसी युद्ध के शुरू में नाज़ी जर्मनी और सोवियत संघ का पोलैंड पर आक्रमण, दुश्मनों के कब्जे में रहने का दुर्भाग्य, युद्ध के बाद साम्यवादी तानाशाहों द्वारा राजनीतिक दमन-शोषण, फिर गुलामी के विरुद्ध विद्रोह और अंततः 1989 में स्वाधीनता मिली। इतिहास के इन तत्त्वों को समझे बिना ज़ग़येफ़स्की की कविताएँ पढ़ी नहीं जा सकती हैं। उदाहरण के लिए 'निष्क्रमण करते लोग' कविता का निम्नलिखित अंश देखिए :

लोग देश से जा रहे हैं असबाब लादे
झुके हुए, भूखे... ...

झुर्री भरे चेहरों वाली बूढ़ी औरतें
बाहों में उठाए जो कुछ है
– नन्हा बच्चा, धरोहर चिराग़, आखिरी पावरोटी।
यह आज बोस्निय है
सितंबर में पोल्स्का, फ्रांस आठ महीने बाद,
सन् पैंतालीस में तुरिन्गेन,
सोमालिया कभी, कभी अफ़गानिस्तान।

इस कविता से गुजरते हुए हम देख सकते हैं कि कवि के निजी अनुभव सार्वभौम बन जाते हैं। इस कविता में उन्होंने अपनी वेदना को विश्व-वेदना और अपनी भटकन को मानवीय नियति के साथ जोड़ दिया है। इसी प्रकार 'अपने माँ-बाप का घर' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए :

तुम आते हो यहाँ पराये व्यक्ति जैसे
जबकि यह तुम्हारे अपने माँ-बाप का घर है।
बेरी, सेब, चेरी की टहनियाँ तुम्हें नहीं पहचानती।
... तुम्हारे जाने के बाद की सारी रातें
उलझ गई
पुराने स्वेटर की ऊन की तरह –
वहाँ जंगली बिल्लियों के झुंड बसते हैं।

ज़ग़येफ़स्की की कविताएँ वेदना, यातना, भटकन, खामोशी और पोलैंड की पीड़ा का गहरा अहसास लिए हैं। यह वह पोलैंड है जो ''परी कथा सा, आरक्षित देश / जिसे नोचते हैं काले उकाब, भूखे / सम्राट, तीसरा रीख और तीसरा रोम'' है। (यहाँ तीसरा रीख का अर्थ है – नाज़ी जर्मनी) परंतु उनकी कविताओं में न तो राष्ट्रोन्माद है, न आक्रोश और उत्तेजना। हालाँकि वह उस देश में बहाए गए ख़ून की एक-एक बूँद से इलियड रच सकते थे, परंतु कवि ने इतिहास न रच कर इतिहास-दृष्टि रखी, जिसकी कवि और पाठक को जरूरत होती है। अतः उनकी कविताओं में धीरज, प्रेम, सत्य और प्रकाश का आह्वान है (प्रभाकर श्रोत्रिय)। उन्हें 'तारा' कविता में उज्ज्वलता की तलाश है :

फिर भी मेरा दिशा-निर्देश करती है
एक तारे की उज्ज्वलता
और केवल उज्ज्वलता हमें
बचा या नष्ट कर सकती है।

कवि ने अपनी माँ की स्मृति में 'एम्स्टर्दम हवाई अड्डे पर' शीर्षक कविता लिखी है जो अपने भाव, वेदना और दुःख का दस्तावेज है – माँ के शव को दफनाना और इस हवाई अड्डे की यादें साथ-साथ जुड़ी हैं। इसमें आए ''हवाई जहाज़ सीमेंट से टकराते थे / मानो गुस्से में, बाज / जिनका शिकार छीन लिया गया हो, भूखे'' जैसे बिंब स्थिति को और भयावह बनाते हैं। कवि ने कहा है – ''मैंने हवाई अड्डे पर तुम्हें विदा दी, उस हड़बड़ी की / घाटी में, जहाँ आँसू बिकते हैं।'' अब कवि को अपनी माँ के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता, ''दिसंबर का गुलाब, मीठी नारंगी : / तुम्हारे बिना अब कोई क्रिसमस / नहीं संभव।'' उसका हृदय चीत्कार कर उठता है :

तुम कहाँ हो?
वहाँ, जहाँ याद दफन है।
वहाँ, जहाँ याद उभरती है।
वहाँ, जहाँ दफन है गुलाब, नारंगी और बर्फ़।
वहाँ, जहाँ राख ही राख।

'परायी सुंदरता में' काव्य-संग्रह में कवि आदम ज़ग़येफ़स्की के वर्ष 1982 से 2009 के बीच प्रकाशित काव्य-संग्रहों में से चुनिंदा कविताएँ शामिल हैं। कवि के अब तक ग्यारह काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनका सबसे पहला काव्य-संग्रह 1972 में 'सूचना' शीर्षक से छपा था। इस अवधि में वे नई तरंग काव्यधारा से जुड़े थे। 1975 में पोलैंड में कवि के लेखन पर पाबंदी भी लगाई गई थी क्योंकि वह तत्कालीन साम्यवादी सत्ता का विरोध करने वालों में शामिल थे। वर्ष 2007 से कवि शिकागो विश्वविद्यालय में पढ़ा भी रहे हैं। उन्होंने कविताओं के अलावा एक उपन्यास भी लिखा है। इसके अलावा वे निबंध-लेखक एवं आलोचक के रूप में भी जाने जाते हैं। कविताओं के अलावा उनकी निबंधों के अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी हैं।

ऊपर हमने अनूदित कविताओं के अनेक उदाहरण देखे जिनसे यह अनुमान लगाना सहज है कि मारिय स्काकुय पुरी और मोनिका ब्रोवार्चिक, इन दोनों अनुवादकों ने कवि की कविताओं का पोलिश भाषा से अनुवाद करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि यह सरल हिंदी में हो। इन कविताओं से बिलकुल यह आभास नहीं होता कि ये अनूदित कविताएँ हैं। दोनों अनुवादकों ने आदम ज़ग़येफ़स्की की कविताओं में प्रयुक्त बिंबों, उपमाओं आदि को हिंदी में ज्यों का त्यों उतारने में सफलता पाई है। कवि की कविताओं के अर्थ, भावार्थ, उसकी लक्षणा अथवा व्यंजना को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसका एक कारण यह भी है कि दोनों अनुवादकों ने कवि ज़ग़येफ़स्की

की उन्हीं कविताओं को अनुवाद के लिए चुना है जिन्हें समझने के लिए किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं होती। उन्होंने इस बात का पुस्तक की 'भूमिका' में स्पष्ट उल्लेख किया है। ''प्रेरणा 'परायी सुंदरता में' भी मिलती है – दूसरों के रचे संगीत में, कला में, साहित्य और दर्शन में। ज़ग़येफ़स्की पश्चिमी सांस्कृतिक परपंरा के साथ गहरा संबंध रखते हैं और उनकी बहुत-सी कविताएँ इसी परंपरा के संदर्भ में हैं। भारतीय पाठक की सुविधा का ध्यान रखते हुए हमने जान-बूझ कर यह कोशिश की है कि ऐसी कविताएँ जिन्हें टिप्पणी के बिना समझना मुश्किल है कम-से-कम चुनी जाएँ।''

काव्य-संकलन में शामिल ज़ग़येफ़स्की की कविताओं से भारतीय पाठक का सहज तादात्म्य हो जाता है क्योंकि इनमें व्यक्त विचार एवं भाव ऐसे हैं जो भारत के पाठक को अजीब अथवा अजनबी नहीं लगते। इस संदर्भ में 'बंदर' शीर्षक कविता विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। इस कविता में कवि ने राजनीतिक व्यक्तियों के प्रति अपनी खीझ, क्रोध, घृणा और आक्रोश को व्यंग्यात्मक भाषा में इस प्रकार प्रकट किया है :

एक दिन बंदरों ने हथिया ली सत्ता
उँगलियों में सोने की अँगूठियाँ ठूँस लीं,
सफ़ेद कलफदार क़मीज़ें पहनीं,
सुगंधित हवाना सिगार का क़श लगाया,
अपने पाँव में डाले चमाचम काले जूते।
हमें पता ही न चला, क्योंकि हम दूसरे
कामों में यस्त थे : कोई अरस्तू पढ़ता रहा
तो कोई आकंठ प्यार में डूबा हुआ था।
शासकों के भाषण ऊँटपटाँग होने लगे,
गपड़-सपड़, पर हमने कभी इन्हें
ध्यान से सुना ही नहीं, हमें संगीत ज्यादा पसंद था।
युद्ध अधिक वहशी होने लगे, जेल खाने
पहले से और गंदे हो गए।
तब जाकर लगा, कि शासन सचमुच बंदरों के हाथ में है।

इस कविता को पढ़कर नहीं लगता कि यह किसी विदेशी कविता का हिंदी अनुवाद है। इसमें प्रयुक्त सहज, सरल प्रवाहपूर्ण हिंदी भाषा अपने मिज़ाज के चरम पर है। इसी में अनुवाद की सफलता है। यदि इस कविता को यह जाने बिना पढ़ा जाए कि इसका अनुवाद दो विदेशी विदूषियों ने पोलिश भाषा की कविता से किया है तो शायद कोई भारतीय पाठक यह समझे कि यह भारत के ही किसी हिंदी कवि की कविता

है। ऐसे ही अनुवाद (काव्यानुवाद) को पुनःसृजन की संज्ञा दी जा सकती है। भारतीय पाठकों को इन दो विदूषी अनुवादकों ने पोलैंड के समकालीन प्रसिद्ध कवि की कविताओं से अनुवाद के माध्यम से परिचित कराया है। इसके लिए वे साधुवाद की पात्र हैं। उन्हें इस प्रकार के आगे भी प्रयास करते रहना चाहिए। इसी तरह, भारतीय साहित्य की कृतियों का पोलिश भाषा में अनुवाद करके पोलैंड के पाठकों को भी भारतीय साहित्य और संस्कृति से परिचित करा सकती हैं। इस तरह वे भारत और पोलैंड में साहित्यिक अनुवाद के माध्यम से घनिष्ठता को और घनिष्ठ बना सकती हैं।

साहित्य अकादमी तो इस प्रकार के प्रकाशन के लिए साधुवाद की पात्र है ही। उसे इसी प्रकार के महत्वपूर्ण कार्य भविष्य में भी करते रहना चाहिए ताकि अंग्रेजी इतर विदेशी भाषाओं में रचित साहित्य से साहित्य-प्रेमी भारतीय जनमानस साक्षात कर सके।

❑

प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

राष्ट्र विकास का मूल मंत्र : अनुवाद*

सूचना प्रौद्योगिकी के आज के युग में ज्ञान-विज्ञान का प्रसार लगातार बढ़ रहा है। भूमंडलीकरण के इस युग में जहाँ एक ओर पूरे विश्व को एक परिवार में परिवर्तित करने की प्रक्रिया चल रही है वहीं विविध विषयों एवं भाषाओं के ज्ञान-विज्ञान का सामान्यीकरण चल रहा है। ऐसे में दो भाषाओं, संस्कृतियों एवं संकल्पनाओं के बीच सेतु का प्रक्रियाबद्ध कार्य अनुवाद कर रहा है। आज का ज्ञान एवं ज्ञान को साधने वाला मानव अकेला नहीं रह सकता। न ही यह संभव है कि वह अकेले ही समस्त संस्कृतियों-विचारों एवं भावनाओं को स्वयं ही अर्जित कर सके। आज के मानव का सबसे बड़ा सहयोगी एवं उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता अनुवाद ही है। अनुवाद अपनी प्रकृति में अत्यंत कठिन, दुःसाध्य एवं दुर्वाह कला है। वह परकाया प्रवेश जैसी सूक्ष्म एवं कठिन कला है। जिस प्रकार योग साधक अभ्यास के माध्यम से साधना करते हुए दूसरे प्राणी के शरीर में प्रवेश करता है तथा उसी प्राणी के मंतव्य को जानकर उसे आत्मसात करता है ठीक उसी प्रकार अनुवादक भी मूल पाठ एवं स्रोत भाषा के मूल मंतव्य तक पहुँचता है, उसे आत्मसात करता है। मूल मंतव्य को आत्मसात करने के पश्चात वह लक्ष्य भाषा की संरचना में उसकी अभिव्यक्ति करता है। ऐसा माना जाता है कि हमारे मन में उठने वाली बातों का 18-20 प्रतिशत भाग ही हम व्यक्त कर पाते हैं तथा छपी भाषा में प्राप्त जानकारी भी हू-ब-हू हम प्रस्तुत नहीं कर पाते। ऐसे में दूसरे के विचारों को जानकर और उसके मंतव्य तक पहुँचकर भला हम अन्य भाषा की वैविध्यपूर्ण संरचना में कैसे व्यक्त कर सकते हैं? इसी कारण कुछ विद्वान अनुवाद को असंभव-सा या प्रवंचना का कर्म मानते हैं। किंतु अभ्यास अथवा प्रशिक्षण द्वारा अनुवाद-कर्म को सार्थक बनाया जा सकता है। प्रशिक्षित होकर अनुवादक राष्ट्रहित का मूल साधन बन सकता है।

* 'अनुवाद से संवाद' (मासिक व्याख्यानमाला) के अंतर्गत प्रस्तुत विचारों पर आधारित।

अनुवाद एक विशिष्ट कला है। अनुवादक निश्चित अनुशासन में नियम-उपनियम तथा व्यवस्था के अनुसार प्रक्रियाशील रहता है। अनुवाद की मूल प्रकृति द्वारा अनेक शब्दों-संकल्पनाओं का जन्म भी होता है। अतः अनुवाद को विज्ञान, कला एवं शिल्प तीनों रूपों में व्यक्त किया गया है। इन तीनों रूपों से ही अनुवाद के विविध क्षेत्र सामने आते हैं। वर्तमान युग के सूक्ष्म विश्लेषक एवं बहुप्रसिद्ध अनुवादविद् लखनऊ के प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित अनुवाद के स्वरूप एवं क्षेत्र पर चर्चा करते हुए आज के युग में अनुवाद की भूमिका को विविध रूपों में वर्णित करते हैं। उनके अनुसार अनुवाद का सबसे पहला महत्वपूर्ण रूप या क्षेत्र कार्यालयी अनुवाद है। सभी मंत्रालयों, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों, सरकारी / गैर-सरकारी संस्थानों में अनुवाद का कार्य बड़ी तत्परता से किया जा रहा है। कार्यालयी अनुवाद के अंतर्गत प्रशासनिक हिंदी पर बल देते हुए सामान्य आदेश, नियम-उपनियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक रिपोर्ट, प्रेस विज्ञप्तियाँ, सरकारी कागज-पत्र, संविदाएँ, करार, टेंडर फार्म आदि प्रलेखों का अनुवाद किया जाता है। कार्यालयी अनुवाद की अपनी पारिभाषिक अथवा औपचारिक भाषा होती है।

अनुवाद का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष या क्षेत्र सृजनात्मक लेखन है। साहित्य के दो मूल रूप हैं – पद्य एवं गद्य। पद्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य तथा मुक्तकाव्य आते हैं। जबकि गद्य के अंतर्गत कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा आदि विधाओं में रचित साहित्य आता है। संपूर्ण सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद पुनर्रचना को महत्व देता है तथा इस पुनर्रचना हेतु अनुवादक का भाषाविज्ञानी, भाषाविद्, सहृदयी एवं साहित्यिक होना परमावश्यक है। इस क्षेत्र में शब्द-व्यापार का सर्वाधिक महत्व है तथा औपचारिक या अनौपचारिक दोनों प्रकार की भाषा यहाँ प्रयोग में लाई जा सकती है। जबकि औपचारिक भाषा को प्रयोग में लाने वाली महत्वपूर्ण अनुवाद-विधा विज्ञान एवं तकनीक का अनुवाद है। इस प्रकार के अनुवाद में अवधारणाओं का महत्व रहता है तथा उसे स्पष्ट करने के लिए उनकी अपनी पारिभाषिक शब्दावली एवं अंतर्राष्ट्रीय लिपि चिह्नों को प्रयोग में लाना चाहिए। वैज्ञानिक अवधारणाओं आदि को स्पष्ट करने के लिए कुछ-कुछ लिप्यंतरित शब्दों को भी लोक-व्यवहार में लाया जा सकता है।

विधि, बैंकिंग, बीमा एवं वाणिज्यिक साहित्य, अनुवाद के अन्य महत्वपूर्ण रूप हैं। ये क्षेत्र पूर्ण रूप से औपचारिक हैं तथा प्रशासन से पूर्णतः संबद्ध हैं। विधि अनुवाद के अंतर्गत राजभाषा हिंदी की अवधारणा एवं न्याय-व्यवस्था संबंधी कार्यों का स्वरूप देखने को मिलता है। इसके अंतर्गत भी दस्तावेज, अधिसूचनाएँ, संविदा, केंद्रीय अधिनियम तथा तत्संबंधी व्याख्यात्मक टीकाएँ, सांविधिक विधियाँ आदि समाहित रहती हैं। जबकि

वाणिज्यिक अनुवाद आज के युग में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप में सामने आ रहा है। आर्थिक व्यवस्था को आधारभूत तथा प्रबंधन की पूर्ण जानकारी को जन-सामान्य के बीच व्यक्त करता वाणिज्यिक अनुवाद आज की मांग बन चुका है।

सूचना-प्रौद्योगिकी के आज के युग में अनुवाद का बहुप्रसिद्ध रूप संचार माध्यमों में देखने को मिलता है। संचार का सबसे महत्वपूर्ण रूप मीडिया है तथा मुद्रित माध्यम (जैसे कि पत्र-पत्रिकाएँ, पेंफलेट आदि) तथा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया (जैसे कि रेडियो, टेलीविजन, कंप्यूटर, कॉन्फ्रेंसिंग, टेली-कॉन्फ्रेंसिंग, टेलीकॉम, मोबाइल, इंटरनेट आदि तथा ब्लॉग एवं फेसबुक) के माध्यम से भी बड़ी मात्रा में अनुवाद कर्म किया जा रहा है। यही नहीं वस्तु को बिक्री योग्य बनाने एवं प्रतियोगिता के युग में स्वयं की महत्ता सिद्ध करने के लिए विज्ञापन भी एक ऐसा संचार माध्यम है जिसकी आवश्यकता आज लगातार बढ़ रही है। इस क्षेत्र में अनुवाद तथा सरल हिंदी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इस प्रकार आज के युग में अनुवाद के क्षेत्रों की संख्या बढ़ रही है तथा उनके माध्यम से अनुवाद संबंधी आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है।

अनुवाद के विविध क्षेत्रों में अनुवाद की पद्धतियाँ पृथक-पृथक होती हैं। प्रो. दीक्षित के अनुसार सृजनात्मक अनुवाद में अनुवादक यदा-कदा ही शब्द-प्रतिशब्द का वाक्य-प्रतिवाक्य अनुवाद करता चलता है। वस्तुतः विज्ञान, कार्यालयी, विधि एवं कुछेक स्थलों में संचार माध्यम का अनुवाद प्रायः उपर्युक्त रूपों में ही मिलता है तथा उनकी अपनी पारिभाषिक शब्दावली होती है जिसका ये प्रयोग करते चलते हैं। किंतु सृजनात्मक साहित्य के अंतर्गत आवश्यकता पड़ने पर मूल भाव या विचार को ग्रहण कर भावानुवाद, सारानुवाद या छायानुवाद भी किया जाता है। यह अनुवाद पुनर्रचना के रूप में हमारे सामने आता है। वैज्ञानिक अनुवाद में लिप्यंतरण का भी प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी अनुवादक अपने विचार के अनुरूप रूपांतरण भी कर देता है। कुछ विशिष्ट साहित्यिक कृतियों की टीकाएँ या भाष्य भी मिलते हैं। अनुवाद के संदर्भ में आशु अनुवाद या तत्काल भाषांतरण का स्वरूप भी देखा जा सकता है। तत्काल भाषांतरण एक विशिष्ट विधा है जिसमें मूल भाव का महत्व रहता है। यह उसी समय वक्ता के सम्मुख किया जाता है। अनुवाद करने के पश्चात् शब्द-भाव मूल्यांकन संबंधी विधा पुनरीक्षण की मानी जाती है जिससे अनुवाद की जाँच-परख की जाती है।

अनुवाद के माध्यम से आज पूरा विश्व ज्ञान का आदान-प्रदान कर रहा है। वैश्वीकरण के दौर में अनुवाद की महत्ता एवं उनके विविध रूप सामने आ रहे हैं। इनके माध्यम से सामाजिक व्यवस्था एकसमान हो रही है। स्पष्टतः कहा जा सकता है कि अनुवाद द्वारा हिंदी अधिकारी, अनुवाद अधिकारी, साहित्यिक अनुवादक, विज्ञापन लेखक, शिक्षक,

अनुभाग अधिकारी, तत्काल भाषांतरकार, रूपांतरकार, पुनरीक्षक, कोशकार आदि पदों को प्राप्त किया जा सकता है। इस कला में संपन्न बनने के लिए कोश-निर्माण की कला सीखनी होगी। स्रोत एवं लक्ष्य भाषा पर पूरी पकड़ बनानी होगी। तकनीकी शब्दावली को आत्मसात करना होगा तथा भाषा पर विषयानुसार सिद्धहस्तता हासिल करनी होगी। इस प्रकार आज के युग में अनुवाद की अपार संभावना एवं क्षेत्र देखे जा सकते हैं। आवश्यकता इसी बात की है कि हम संकल्प के साथ इस विधा को जाने-परखें एवं उसे अपने जीवन-आजीविका का माध्यम बनाएँ। ऐसा करने पर हम राष्ट्र का केवल उत्थान ही नहीं कर सकेंगे अपितु राष्ट्र को प्रगति की राह पर आरूढ़ भी करेंगे।

उपर्युक्त विचार 'अनुवादक से संवाद' नामक कार्यक्रम के अंतर्गत प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित ने प्रस्तुत किए। यह कार्यक्रम भारतीय अनुवाद परिषद द्वारा उनके अपने संस्थान में 1 सितंबर, 2011 को आयोजित किया गया। इस अवसर पर मंच संचालन अनुवाद पाठ्यक्रम के निदेशक डॉ. पूरनचंद टंडन ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन भारतीय अनुवाद परिषद के उपाध्यक्ष श्री कृष्णगोपाल अग्रवाल ने किया। इस कार्यक्रम में वर्तमान सत्र के विद्यार्थियों के अतिरिक्त परिषद के अपर सचिव डॉ. बालसुब्रह्मण्यम, सचिव (प्रचार-प्रसार) डॉ. हरीश कुमार सेठी, उत्तर प्रदेश के पीलीभीत से डॉ. प्रणव शर्मा, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर हेमचंद्र पाँडे, तथा अन्य विश्वविद्यालयों के कई प्राध्यापक, अनुवादविद् एवं भाषाविद् उपस्थित थे।

– प्रस्तुति : डॉ. कुलभूषण शर्मा

लेखक/अनुवादक मंडल

डॉ. मनोज पांडेय
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आर.टी.एम. नागपुर विश्वविद्यालय,
नागपुर-440033

डॉ. राजनारायण अवस्थी
डी-32/1, डी.आर.डी.ओ. कैंपस
कंचनबाग, हैदराबाद-500058

डॉ. सत्येंद्र सिंह
केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो
नई दिल्ली

प्रो. हेमचंद्र पाँडे
वाई-81, हौजखास, नई दिल्ली-110016

डॉ. हरीश कुमार सेठी
सहायक प्रोफेसर
अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-110068

डॉ. किरण सिंह वर्मा, सहायक प्रोफेसर
रूसी अध्ययन केंद्र
भाषा साहित्य तथा संस्कृति संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

प्रो. विजयकुमारन सी.पी.वी.
अतिथि आचार्य (हिंदी)
एशियाई अध्ययन केंद्र
वल्लदोलिद विश्वविद्यालय,
वल्लदोलिद-47005 (स्पेन)

प्रो. सुशील कुमार शर्मा
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय
विश्वविद्यालय, शिलांग-793022

प्रो. बी.वै. ललितांबा
न.एन.एच.सी.एस. लेआउट
8 मेन, विजय नगर, बंगलुरु-560040

डॉ. अंजना बख्शी
207, साबरमती हॉस्टल,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110062

डॉ. शोभा एम. पवार
हिंदी विभाग,
श्रीमती चंपाबेन बालचंदशाह महाविद्यालय
रतनशीनगर, सांगली, पिन-416416

के.जे. हेलेन

अनीता पंडित
संपादक : 'संवदिया' त्रैमासिक, डी-3, 1/22,
सेक्टर-5, राजेंद्र नगर, साहिबाबाद,
गाजियाबाद-201005 (उत्तर प्रदेश)

डॉ. देवेंद्र कुमार देवेश
उप-संपादक, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

संतोष खन्ना
संपादक 'महिला विधि भारती'
बी-एच/48, पूर्वी शालीमार बाग
दिल्ली-110088

डॉ. कुलभूषण शर्मा, सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली